वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २०

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६२ अंक १०
अक्तूबर २०२४

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६२

अंक १०

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

आश्विन, सम्वत् २०८१

अक्तूबर, २०२४

अनुक्रमणिका

* यह वही देश है, जहाँ सीता-सावित्री का जन्म हुआ था : विवेकानन्द ४३८
* नवदुर्गा प्रकीर्तिता: (स्वामी अलोकानन्द) ४४१
* स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण देव से क्या सीखा? (स्वामी सत्यरूपानन्द) ४४८
* देवी-तत्त्व (प्रो. डॉ. यज्ञेश्वर स. शास्त्री) ४५१
* (बच्चों का आंगन) दुर्गा पूजा का आध्यात्मिक और वैज्ञानिक तत्व (श्रीमती मिताली सिंह) ४५४
* दुर्गानाम की महिमा अपरम्पार (उत्कर्ष चौबे) ४५८
* (युवा प्रांगण) महान व्यक्तित्त्व की संगति का प्रभाव (स्वामी गुणदानन्द) ४६३
* शिल्पशास्त्र में महिषासुरमर्दिनी दुर्गा (डॉ. अरुपम सान्याल) ४६६
* तन्त्रोपनिषदों में शक्ति की अवधारणा (पं. भवनाथ झा) ४७०
* (कविता) जय माँ दुर्गे दुर्गतिनाशिनी (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ४५०
* (कविता) जय जननी जगदम्ब भवानी (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी') ४५०
* (कविता) जोड़ हृदय का तार (सदाराम सिन्हा 'स्नेही') ४७२

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ४३७
पुरखों की थाती ४३७
सम्पादकीय ४३९
रामगीता ४५५
प्रश्नोपनिषद् ४६५
श्रीरामकृष्ण-गीता ४६९
गीतातत्त्व-चिन्तन ४७३
साधुओं के पावन प्रसंग ४७६
समाचार और सूचनाएँ ४७८

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ***०९८२७१ ९७५३५*** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २०/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	६० यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	२५०/-	१२५०/-	
भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा।			

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर माँ दुर्गा की मूर्ति रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी की है।

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्त्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ६१ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्त्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। **– व्यवस्थापक**

अक्तूबर माह के जयन्ती और त्यौहार

०२	स्वामी अखण्डानन्द, महात्मा गाँधी, लाल बहादुर शास्त्री
१०	दुर्गा महाष्टमी
३१	लक्ष्मी पूजा, दीपावली
१४,२८	एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद (उ.प्र.)	९,००१/-
,, ,, ,,	१४,००१/-
,, ,, ,,	९,००१/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

महा कुम्भ (पूर्ण कुम्भ) मेला- २०२५

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम

(रामकृष्ण मठ और मिशन का शाखा-केन्द्र, पो. बेलूड़ मठ, जिला - हावड़ा-७११२०२)

विज्ञानानन्द मार्ग, मुट्ठीगंज, प्रयागराज – २११ ००३, मोबा. : ७९०८८०४२०३/७९०५३८६०५६

email : rkmsald@gmail.com, allahabad@rkmm.org

website – https//prayagraj.rkmm.org

निवेदन

हम सभी जानते हैं कि तीर्थराज प्रयाग (प्रयागराज) विभिन्न धर्मों का आध्यात्मिक पावन स्थल है । न केवल हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय, अपितु सभी धर्मों और मतों के लोग, तीर्थराज प्रयाग के आध्यात्मिक परिवेश में व्याप्त विशाल स्पन्दन की अनुभूति करने यहाँ आते हैं । महाकुम्भ मेला के समय यहाँ विभिन्न धर्मों का समागम दिखायी देता है, जिसकी छवि मानो लघु-भारत के सदृश हो जाती है । संत-महात्मा एवं धर्माचार्यों की अनुकम्पा से अनादिकाल से भक्तगण पावन त्रिवेणी संगम में डुबकी लगाकर पवित्र होने हेतु कुम्भ मेले में आते हैं । आगामी **कुम्भ मेला ११ जनवरी से १५ फरवरी, २०२५** तक आयोजित किया जा रहा है । सरकारी आकलन के अनुसार मेले में ४० करोड़ से अधिक साधु, भक्त और तीर्थयात्री पावन जल में स्नान करेंगे ।

इस अवसर पर रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, इलाहाबाद, देश के दूर-सुदूर क्षेत्रों से आये लगभग आठ लाख से अधिक साधुओं, भक्तों और तीर्थयात्रियों की सेवा-सहायता में अपना सहयोग देगा । हमारे लिए यह विशिष्ट सुअवसर है कि हम ठाकुर, श्रीमाँ और स्वामीजी के संदेश का प्रसार करें और स्वामीजी के 'मानव-सेवा ही ईश्वर-सेवा है' के सपने को साकार कर उनका आशीर्वाद प्राप्त करें । परम पूज्य स्वामी विज्ञानानन्दजी महाराज (रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, इलाहाबाद के संस्थापक और श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य) के आशीर्वाद से हम त्रिवेणी संगम तट पर शिविर का आयोजन कर रहे हैं ।

मेले के दौरान श्रद्धालुओं, तीर्थयात्रियों को निम्नलिखित सुविधायें दी जायेंगी –

* प्रार्थना और व्याख्यान सभागृह
* चौबीस घण्टे नि:शुल्क, आपातकालीन सुविधासम्पन्न धर्मार्थ चिकित्सालय
* पुस्तक-विक्रय केन्द्र एवं ठाकुर, श्रीमाँ और स्वामीजी की चित्र-प्रदर्शनी
* साधु, भक्त और तीर्थयात्रियों के भोजन और आवास की सुविधा

इस कुम्भ मेला शिविर का कुल व्यय लगभग २,००,००,०००/- (दो करोड़) रुपये अनुमानित किया गया है । इतने बड़े व्यय-भार के वहन हेतु हम आपसे और अन्य उदारहृदय भक्तों से आग्रह करते हैं कि वे इस मंगल कार्य में हमारा सहयोग करें, साथ ही स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रवर्तित सेवा-यज्ञ के अधिकारी बनें ।

आपकी उदारतापूर्वक दी गई दान-राशि सहर्ष स्वीकार और सूचित की जायेगी । आप दान-राशि 'रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, इलाहाबाद' के नाम से चेक, डी.डी. द्वारा अथवा बैंक ट्रांसफर **NEFT/ RTGS on State Bank of India, Allahabad, A/C. NO. 10210448619, IFSC : SBIN0002584** में जमा करा सकते हैं ।

आपका दान आयकर अधिनियम १९६१ की धारा ८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है । कृपया दानराशि के साथ अपना पैन नम्बर, आधार नं., ईमेल और मोबाईल नं. अवश्य भेजें । हमारा पैन नम्बर – AAAARIO77P है ।

आशा है कि आप इस विशेष अवसर पर हमारे सेवाकार्यों में सहयोग कर अपना जीवन धन्य करेंगे ।

नमस्कार और मंगल-कामनाओं सहित,

स्वामी अक्षयानन्द

सचिव

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

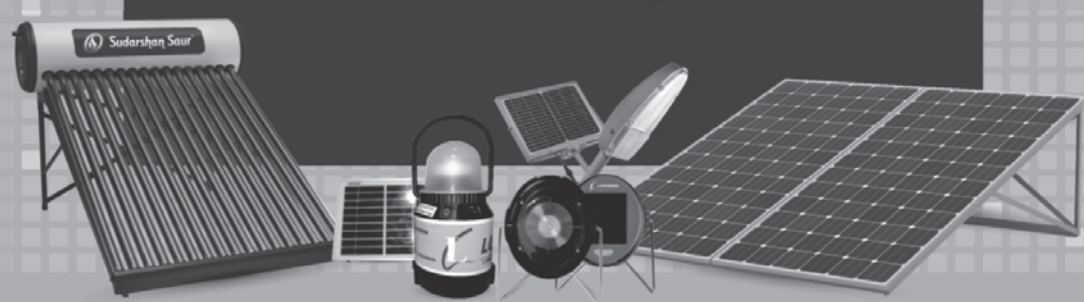

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६२ **अक्तूबर २०२४** **अंक १०**

दुर्गा वन्दना

महान्तं विश्वासं तव चरणपङ्केरुहयुगे
निधायान्यन्नैवाश्रितमिह मया दैवतमुमे ।
तथापि त्वच्चेतो यदि मयि न जायेत सदयं
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ।।

– हे लम्बोदर गणेश की जननी उमे ! मैंने तुम्हारे युगल चरणारविन्दों में बहुत बड़ा विश्वास रखकर किसी अन्य देवता का आश्रय नहीं लिया, तथापि यदि तुम्हारा चित्त मुझ पर सदय न हो, तो अब मैं किसकी शरण जाऊँगा?

पुरखों की थाती

राजा राष्ट्रकृतं पापं राज्ञः पापं पुरोहितः।
भर्ता च स्त्रीकृतं पापं शिष्यपापं गुरुस्तथा।।८४५।।

– राष्ट्र द्वारा किये गए पाप का फल राजा भोगता है, राजा द्वारा किये गए पाप को उसका पुरोहित भोगता है, पत्नी द्वारा किये गए पाप को पति और शिष्य द्वारा किये गए पाप का फल गुरु भोगता है।

लालनाद् बहवो दोषास्ताडनाद् बहवो गुणाः।
तस्मात्पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्न तु लालयेत्।।८४६।।

– (बच्चों को) ज्यादा लाड़-प्यार देने से अनेक दोष आते हैं और उन्हें अनुशासित रखने से अनेक गुण आते हैं। अत: पुत्र तथा शिष्य को ज्यादा दुलारना नहीं, अपितु अनुशासित करना चाहिये।

लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता।
पंच यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात्तत्र संगतिम।।८४७।।

– जिस स्थान में आजीविका का कोई साधन, लोगों में भय, लज्जा, दयालुता और त्याग की वृत्ति – ये पाँच चीजें न हो, वहाँ व्यक्ति को निवास नहीं करना चाहिए।

यह वही देश है, जहाँ सीता-सावित्री का जन्म हुआ था : विवेकानन्द

उन्नति के लिए सबसे पहले स्वाधीनता की आवश्यकता है। यदि तुम लोगों में से कोई यह कहने का साहस करे कि मैं अमुक स्त्री अथवा अमुक लड़के की मुक्ति के लिए काम करूँगा, तो यह गलत है, हजार बार गलत होगा। मुझसे बार-बार यह पूछा जाता है कि विधवाओं की समस्या के बारे में और स्त्रियों के प्रश्न के विषय में आप क्या सोचते हैं? मैं इस प्रश्न का अन्तिम उत्तर यह देता हूँ – क्या मैं विधवा हूँ, जो तुम ऐसा निरर्थक प्रश्न मुझसे पूछते हो? क्या मैं स्त्री हूँ, जो तुम बारम्बार मुझसे यही प्रश्न करते हो? स्त्री जाति के प्रश्न को हल करने के लिए आगे बढ़ने वाले तुम हो कौन? क्या तुम हर एक विधवा और हर एक स्त्री के भाग्यविधाता भगवान हो? दूर रहो ! अपनी समस्याओं का समाधान वे स्वयं कर लेगीं। (५/१४१)

स्त्रियों के विषय में हमारा हस्तक्षेप करने का अधिकार केवल शिक्षा का प्रचार कर देने तक ही सीमित है। हमें नारियों को ऐसी स्थिति में पहुँचा देना चाहिए, जहाँ वे अपनी समस्या को अपने ढंग से स्वयं सुलझा सकें। उनके लिए यह काम न कोई कर सकता है और न किसी को करना ही चाहिए। हमारी भारतीय नारियाँ संसार की अन्य किन्हीं भी नारियों की भाँति इसे करने की क्षमता रखती हैं। (४/२६७)

शिष्य – किन्तु महाराज, इस देश में गार्गी, खना, लीलावती के समान गुणवती शिक्षित स्त्रियाँ अब पायी कहाँ जाती हैं?

स्वामीजी – क्या ऐसी स्त्रियाँ इस देश में नहीं हैं? अरे, यह वही देश है, जहाँ सीता और सावित्री का जन्म हुआ था। पुण्यक्षेत्र भारत में अभी तक स्त्रियों में जैसा चरित्र, सेवाभाव, स्नेह, दया, तुष्टि और भक्ति पायी जाती है, पृथ्वी पर और कहीं ऐसा नहीं है। पाश्चात्य देशों में स्त्रियों को देखने पर कुछ समय तक यही नहीं ठीक हो पाता था कि वे स्त्रियाँ हैं, देखने में ठीक पुरुषों के समान थीं। ट्रामगाड़ी चलाती हैं, ऑफिस जाती हैं,

स्कूल जाती हैं, आध्यापन करती हैं ! एक मात्र भारत ही में स्त्रियों में लज्जा, विनय इत्यादि देखकर नेत्रों को शान्ति मिलती है। ऐसे योग्य आधार के प्रस्तुत होने पर भी तुम उनकी उन्नति न कर सके ! इनको ज्ञानरूपी ज्योति दिखाने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया ! उचित रीति से शिक्षा पाने पर ये आदर्श स्त्रियाँ बन सकती हैं।(६/३८-३९)

शिक्षा प्राप्त होने पर स्त्रियाँ अपनी समस्याएँ स्वयं ही हल कर लेंगी। अब तक तो उन्होंने केवल असहाय अवस्था में दूसरों पर आश्रित हो जीवन यापन करना और थोड़ी-सी भी अनिष्ट या संकट की आशंका होने पर आँसू बहाना ही सीखा है। पर अब दूसरी बातों के साथ-साथ उन्हें बहादुर भी बनना चाहिए। आज के जमाने में उनके लिए आत्मरक्षा करना सीखना भी बहुत जरूरी हो गया है। देखो झाँसी की रानी कैसी महान थीं ! (८/२७७)

सम्पादकीय

जगत्तारिणी त्राहि दुर्गे

साधक-श्रेष्ठ भगवान शिव

साधक लक्ष्य की प्राप्ति के लिये साधना करते हैं। साधना-काल में कुछ लोग भ्रमित, पतित और अहंकारी हो जाते हैं, जिससे उनकी प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और वे लक्ष्य से बहुत दूर चले जाते हैं। कुछ लोग अपने अन्त:करण में न झाँककर दूसरे साधकों के दोष-दर्शन और उसके प्रचार-प्रसार में ही अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने में लगे रहते हैं। किसी साधक के पतन पर कुछ लोग हर्षित होते हैं और स्वयं को उससे बड़ा समझने और प्रदर्शित करने लगते हैं। लेकिन सच्चा साधक कभी किसी की निन्दा नहीं करता, किसी के पतन पर प्रसन्न नहीं होता, किसी का अपमान नहीं करता, बल्कि उस अवस्था से उबरने के लिये वह दूसरे साधकों की सहायता करता है। वह भगवान की त्रिगुणमयी माया से स्वयं को बचाने के लिये और सबके मंगल के लिये भगवान से प्रार्थना करता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी भगवान के प्रति नित्य शरणागत रहते हैं। भगवान शंकर स्वयं उच्च कोटि के साधक हैं, जो सदा भगवान राम के प्रति समर्पित और शरणागत होकर रहते हैं। उनकी उच्च साधकवृत्ति की घटना यहाँ उल्लेखनीय है।

भगवान श्रीराम लंका में बहुत दिनों से रावण की सेना के साथ युद्ध कर रहे थे। अन्त में भगवान ने रावण का वध किया। इसके साथ ही युद्ध समाप्त हो गया। उसके बाद देवों ने आकर भगवान राम की वन्दना की। देवों ने कहा –

बिस्व द्रोह रत यह खल कामी।
निज अघ गयउ कुमारगगामी।।...६/१०९/४
यह खल मलीन सदा सुरद्रोही।
काम लोभ मद रत अति द्रोही।।
अधम सिरोमनि तव पद पावा।
यह हमरे मन विसमय आवा।।६/१०९/७,८

– हे प्रभु, विश्व के द्रोह में तत्पर यह दुष्ट, कामी, कुमार्गगामी रावण अपने ही पाप से नष्ट हो गया। ...यह दुष्ट मलीनहृदय, देवताओं का नित्य शत्रु, काम, लोभ और मद के परायण तथा अत्यन्त क्रोधी था। ऐसे अधमों के शिरोमणि ने आपका परम पद पा लिया। इससे हमारे मन में आश्चर्य हुआ, इत्यादि वन्दना करने के पश्चात् देवता सुमन-वृष्टि कर अपने-अपने विमानों पर चढ़कर चले गये –

सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर प्रभु पहिं आयउ संभु सुजान।।
६/११४ (क)

देवताओं के चले जाने के बाद सुअवसर देखकर सुजान शंकरजी भगवान श्रीरामचन्द्र जी के पास आते हैं और भगवान की वन्दना करने लगते हैं। उनकी मनोदशा कैसी है? गोस्वामीजी लिखते हैं –

परम प्रीति कर जोरि जुग नलिन नयन भरि बारि।
पुलकित तन गदगद गिराँ बिनय करत त्रिपुरारि।।
६/११४ (ख)

शंकरजी परम प्रेम से दोनों हाथ जोड़कर, पद्माक्षों में अश्रु भरकर, पुलकित शरीर और गद्गद वाणी से भगवान की वन्दना करने लगते हैं। उन्होंने वन्दना क्या की? उन्होंने अपनी वन्दना में कहीं भी रावण का नाम नहीं लिया। उसके सम्बन्ध में कोई बात नहीं कही। उनकी वन्दना का प्रथम शब्द था –

मामभिरक्षय रघुकुल नायक।
धृत बर चाप रुचिर कर सायक।।
मोह महा घन पटल प्रभंजन।
संसय बिपिन अनल सुर रंजन।।...
भव बारिधि मंदर परमं दर।
बारय तारय संसृति दुस्तर।।
(६/११४ (ख)/१,२,६)

शिवजी कहते हैं – "हे रघुकुल के नायक ! आप अपने सुन्दर हाथों में श्रेष्ठ धनुष और सुन्दर बाण धारण किये हुये मेरी रक्षा कीजिये। आप महामोह रूपी मेघ समूह को उड़ाने के लिये प्रचण्ड पवन हैं, संशय रूपी वन को भस्म करने के लिये अग्नि हैं और देवताओं को आनन्द देनेवाले हैं। ...भवसागर के लिये आप मन्दराचल पर्वत हैं। आप हमारे

परम भय को दूर कीजिये और हमें दुस्तर संसार-सागर से पार कीजिये।'' शिवजी कहते हैं कि प्रभु, मुझे अत्यन्त भय लग रहा है। यह अपार भव-सागर तरने में बहुत कठिन है। अत: आप हमारे अत्यन्त भय को दूर कर दीजिये और इस दुस्तर संसार-सिन्धु से पार कर दीजिये। शिवजी ने भगवान से अन्त में कहा कि प्रभो ! आप अनुज लक्ष्मणजी और जानकीजी के साथ मेरे हृदय के अन्दर निवास कीजिये –

अनुज जानकी सहित निरंतर।
बसहु राम नृप मम उर अंतर।।

(६/११४(ख)/८)

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिवजी ने न तो रावण के सम्बन्ध में एक शब्द कहा और न ही इतने बड़े अत्याचारी रावण का वध करने के लिये भगवान श्रीराम को धन्यवाद दिया, न उनकी प्रशंसा की। वे विगलित कंठ से भगवान से अपनी रक्षा हेतु प्रार्थना लगे। यही उत्कृष्ट साधक का लक्षण है। शिवजी उत्कृष्ट साधक सदृश अपनी आन्तरिक कमियों को देखते हैं और उसे दूर करने के लिये भगवान श्रीराम से प्रार्थना करते हैं। यह साधक सबसे बड़ा सद्गुण है, जो उसके भगवत्-प्राप्ति में परम सहायक होता है।

भगवान श्रीरामकृष्ण किसी की निन्दा आदि की वार्ता पसन्द नहीं करते थे। वे हमेशा भक्तों को भगवान की बातें बताते थे और भक्तों को आपस में भगवान की ही बातें करने को कहते थे।

माँ मेरी रक्षा करो

सम्भवत: सिद्धेश्वरी तन्त्र में उमा-महेश्वर संवाद का उल्लेख मिलता है। उसमें माँ दुर्गा से प्रार्थना की गयी है। भक्त कहता है, हे जगत्-तारिणी माँ दुर्गे ! मेरी रक्षा करो –

नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकम्पे
नमस्ते जगद्व्यापिके विश्वरूपे।
नमस्ते जगद्वन्द्यपादारविन्दे
नमस्ते महोयोगिनि ज्ञानरूपे।।

– हे शरण्ये ! हे शिवे ! हे दयामयि ! आपको नमस्कार है। हे जगदव्यापिके ! हे विश्वरूपे ! आपको नमस्कार है। विश्व में सभी आपके चरण कमलों की वन्दना करते हैं, आपको नमस्कार है। हे जगत्तारिणी ! आपको नमस्कार है। हे दुर्गे ! आप रक्षा कीजिये।

साधक यहाँ भी भयग्रस्त है, संसार की माया और उसके त्रिगुण-पाश उसे सदा जकड़ने के लिये तत्पर हैं। इससे भयग्रस्त हो वह माँ दुर्गा से याचना करता है –

नमश्चण्डिके चण्डदोर्दण्डलीला
समुत्खण्डिताखण्डलाशेषभीते।
त्वमेका गतिर्विघ्नसन्दोहहन्त्री
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे।।

– हे माँ ! तुमने प्रचण्ड बाहुबल द्वारा अनायास ही इन्द्र के अशेष भय को समाप्त किया है। हे चण्डिके ! तुमको नमस्कार है ! तुम्ही एकमात्र हमारी गति और हमारे सभी बिघ्नों की विनाशिका हो। हे जगत्तारिणी दुर्गे ! तुम्हें नमस्कार है, तुम हमारी रक्षा करो।

राजा भर्तृहरिजी कहते हैं – **सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां ...**। इस संसार की सभी वस्तुएँ मानवों के लिये भयप्रद हैं। इसलिये भक्त माँ से प्रार्थना करता है, माँ मुझे निर्भय कर दो। मुझे अरण्य में, भीषण युद्ध में, शत्रुओं के बीच में, अग्नि में, समुद्र में, निर्जन में, राजद्वार में सर्वत्र भय लगता है। इस महा भय से तुम्हीं मुक्त कर सकती हो, क्योंकि तुम अभया, निर्भया और भयनाशिनी हो। विपत्ति में डूबे, व्याधि-पीड़ितों, चोर-डकैतों और राजपुरुषों से त्रस्त, संकटग्रस्त सभी प्राणियों की रक्षा करो। हे माँ, दीनों, अनाथों, तृर्षातों, क्षुधितों, भयग्रस्तों और बद्ध जीवों की तुम्हीं एकमात्र गति हो, तुम्ही एकमात्र शरण हो। हे माँ ! हम सबकी रक्षा करो।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव माँ से प्रार्थना कर रहे हैं – ''माँ मैं तुम्हारी शरण में हूँ, शरणागत हूँ। तुम्हारे चरण कमलों में मैंने शरण ली है। माँ, मैं देह-सुख नहीं चाहता, मान-सम्मान नहीं चाहता, अणिमादि अष्टसिद्धियाँ नहीं चाहता, केवल यह कहता हूँ कि तुम्हारे पादपद्मों में शुद्धा भक्ति हो – निष्काम, निर्मल, अहेतुकी भक्ति। माँ, तुम्हारी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न होऊँ, तुम्हारी माया के संसार के कामिनी-कांचन पर कभी प्रेम न हो। माँ, तुम्हारे सिवाय मेरा कोई नहीं है। मैं भजन-साधनहीन हूँ, ज्ञान-भक्तिहीन हूँ, कृपा करके अपने श्रीपादपद्मों में मुझे भक्ति दो।''

जगन्माता माँ दुर्गा हम सबकी सदा रक्षा करें, यही उनके चरणों में प्रार्थना है। जय माँ ! त्राहि माम् ! ○○○

नवदुर्गा प्रकीर्तिताः

स्वामी अलोकानन्द, रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

अनुवादक – उत्कर्ष चौबे, वाराणसी

व्यासशिष्य शतानीक ने किसी समय सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी से प्रश्न किया – **'ॐ यद्गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम्। यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह।।'** अर्थात् जो इस संसार में परम गोपनीय तथा मनुष्यों की सब प्रकार से रक्षा करनेवाला है तथा जिसे अब तक आपने दूसरे किसी के सामने प्रकट नहीं किया हो, ऐसा कोई साधन मुझे बताइये। इसके उत्तर में पितामह ब्रह्मदेव ने कहा, 'ब्रह्मन् ! ऐसा साधन तो एक देवी का कवच ही है, जो गोपनीय से भी परम गोपनीय, पवित्र तथा सम्पूर्ण प्राणियों का उपकार करने वाला है। उसे श्रवण करो।'' इसी देवी कवच के आरम्भिक श्लोकों में ही नवदुर्गाओं का परिचय दिया गया है –

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्।।
पंचमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम्।।
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः।

नवरात्रि की प्रत्येक तिथियों में निर्विघ्न चण्डी-जप व पूजन-समापन के लिए प्रथम ही देवी के एक-एक स्वरूप का वर्णन किया गया है। आनन्दवन काशी में पृथक-पृथक स्थलों पर इन नवदुर्गाओं का मूल-मन्दिर पृथक-पृथक स्थित है। आज भी नवरात्रों में देश-विदेश के अनेकों भक्तगण भारी संख्या में प्रत्येक दिन एक-एक मन्दिरों की अति भक्तिपूर्वक यात्रा करके पूजा, जप, दर्शनादि करते हैं। मनुष्यों की ऐसी व्याकुलता व प्रार्थना देखकर देवी विघ्ननिवारिणी के महात्म्य पर दृढ़ विश्वास हो जाता है। इस विषय में एक शंका होना स्वभाविक-सी बात है कि नव प्रकार की भिन्न-भिन्न देवियाँ हैं अथवा एक ही देवी के नौ रूप हैं? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि एक ही देवी दुर्गा के नौ भेद हैं। जैसे योगी गण स्वल्प समय में ही कर्मक्षय करने के लिये कायव्यूह अर्थात् एक ही व्यक्ति पृथक-पृथक देह-धारण कर रहते हैं, ठीक उसी प्रकार देवी के भी ये नौ रूप हैं। नीलकण्ठ के अनुसार – **'योगिनः कायव्यूहवदेकस्या एव दुर्गाया एते नव भेदा ये शास्त्रे ध्येयत्वेन प्रोक्तास्ते मया कीर्तिता इत्यर्थः।** इस लघु आलेख के माध्यम से हमलोग शारदीय नवरात्रि के पावन अवसर पर नवदुर्गा का स्मरण-मनन करेंगे।

शैलपुत्री दुर्गा मन्दिर, वाराणसी

प्रथमं शैलपुत्री

'जाता शैलेन्द्रगेहे या शैलराजसुता ततः।' (देवी पुराण ३७/३५) शैलराज हिमालय के घर जन्म लेने के कारण भवानी का शैलपुत्री नाम विख्यात है। कूर्मपुराण में कथा आती है कि पर्वतराज हिमालय ने भगवती को कन्यारूप में प्राप्त करने के लिए कठोर तपस्या की। भक्तवत्सला देवी भी करुणाविगलित हो हिमवान् के यहाँ पुत्री रूप में आविर्भूत हुईं।

काशी में वाराणसी के अन्तिम सीमा पर वरुणा तट पर अलईपुरा में मड़ी घाट के समीप ए-४०/११ में शैलपुत्री देवी का मन्दिर स्थित है। यद्यपि काफी वर्षों से अलईपुरा में विधमर्मियों का प्रभाव व उनकी बस्तियाँ हैं, तथापि भक्तों द्वारा नित्य भगवती सेवित हैं। विधर्मियों ने किसी भी प्रकार से मन्दिर को क्षतिग्रस्त नहीं किया है। पुराने ध्वंसावशेष के ऊपर नये मन्दिर का निर्माण हुआ है। गर्भगृह की पश्चिमी दीवार पर कोष्ठी (काले) पत्थर का छोटा-सा देवी-विग्रह विद्यमान है। देवी वृषारूढ़ा हैं तथा दाहिने हाथ में त्रिशूल और बायें हाथ में पद्म धारण की हुई हैं। रक्त वस्त्रों व चमकीली चुनरियों से पूर्णतः आवृत भगवती के केवल

मुखमण्डल के ही दर्शन होते हैं। देवी के नाक में अत्यन्त सुन्दर नथ शोभायमान है। देवी के समकक्ष ठीक सामने ही एक छोटे कुण्ड में काशी खण्डोक्त शिवलिंग – शैलेश्वर शिव विराजमान हैं। देवी की मूर्ति एक हाथ ऊँची है। जवापुष्पों से सुसज्जित देवी शैलपुत्री को प्रणाम –

वन्दे वाञ्छितलाभाय चन्द्रार्धकृतशेखराम्।
वृषारूढां शूलधरां शैलपुत्रीं यशस्विनीम्।।

दक्षयज्ञ में पति-निन्दा नहीं सह सकने के कारण दाक्षायणी सती ने देह त्याग दिया था। योगाग्नि में दग्ध सतीदेह को कन्धे पर लेकर प्रलयंकर शंकर ने प्रलयकारी ताडण्व किया था। सृष्टि रक्षणार्थ भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से सती देह को खण्ड-खण्ड कर दिया। ये सति-देह-खण्ड मुख्यत: जिन स्थानों पर गिरे, वे स्थान ५१ शक्तिपीठ के रूप में प्रसिद्ध हुए। महादेव समाधिमग्न हुए। ताड़कासुर से स्वर्गराज्य की रक्षा हेतु देवसेनापति की आवश्यकता हुई, जिसका जन्म ब्रह्माजी के अनुसार शिव-शक्ति के मिलन द्वारा ही सम्भव था। इसलिये देवताओं ने देवी आद्याशक्ति महामाया की कातर स्वर में प्रार्थना की। करुणाविगलित हो भवानी ने हिमालय के यहाँ कन्यारूप में अवतार ग्रहण किया।

द्वितीयं ब्रह्मचारिणी

पंचगंगा घाट पर भगवान वेणीमाधव के मन्दिर के बगल की उत्तर दिशा में जानेवाली गली के भीतर के २२/८२ में देवी ब्रह्मचारिणी का छोटा मन्दिर अवस्थित है, जिसके दरवाजे पर लिखा है – 'छोटी दुर्गा जी : ब्रह्मचारिणी मंदिर' तथा दीवारों पर लिखा हुआ है –

ब्रह्मचारिणी देवी दुर्गा मंदिर, वाराणसी

'न मोक्षस्य आकांक्षा भव-विभव-वांछा अपि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छा अपि न पुनः।
अतः त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानी इति जपतः।।'

मुख्य दरवाजे के ऊपर ही ठीक दो फुट ऊँची पीतल की रेलिंगों से घिरी हुई एक छोटी वेदी है, जिसके एक हाथ ऊपर एक छोटी-सी रक्तवस्त्रों से अलंकृत, स्वर्ण मुकुटावृत धातुमयी मूर्ति है। वे दक्षिण हस्त में जपमाला से जप करती हुई, वामहस्त में कमण्डलधारी तथा आलुलायित-कुन्तला हैं –

दधाना करपद्माभ्यामक्षमालाकमण्डलू।
देवी प्रसीदतु मयि ब्रह्मचारिण्यनुत्तमा।।

कहा जाता है कि देवी ने जो शिवजी को पतिरूप में प्राप्त करने के लिय हिमालय की कन्दराओं में जाकर कठोर तप किया था, यह वही तपश्चिनी मूर्ति है। देवीपुराण में कहा गया है – **'वेदेषु चरते यस्मात्तेन सा ब्रह्मचारिणी (४५/२७)** अर्थात् सर्ववेदों में विचरण करने के कारण ही देवी का ब्रह्मचारिणी नाम हुआ है। प्रदीप टीकाकार के अनुसार – **'ब्रह्म सच्चिदानन्दरूपं तच्चारयितुं प्रापयितुं शीलमस्याः सा ब्रह्मचारिणी ब्रह्मरूपप्रदेत्यर्थः।''** अर्थात् सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म को प्राप्त कराना ही जिनका स्वभाव हो, वही ब्रह्मचारिणी हैं। कठोर ब्रह्मचर्य का पालन इन्होंने किया था। इतना ही नहीं खाद्य-वस्तु व जल तो दूर, इन्होंने नीचे गिरे हुए और गले हुए पत्तों को भी ग्रहण नहीं किया, जिसके कारण इनका नाम अपर्णा हुआ। माता मेनका ने इनकी कठोर तपस्या को देख इनसे विनती की, 'उ-मा' – और नहीं माँ। इसीलिये भवानी उमा नाम से भी प्रसिद्ध हैं – **'उमेति मात्रा तपसो निषिद्धा पश्चादुमाख्यां सुमुखी जगाम'**। केनोपनिषद में वर्णित उमा हेमवती के आख्यान का अवलम्बन करके ब्रह्मचारिणी देवी की व्याख्या कोई-कोई इस प्रकार करता है – **ब्रह्म चारयितुं शीलमस्याः** अर्थात् ब्रह्मज्ञान-दान व ब्रह्म की प्राप्ति कराना, जिनका स्वभाव हो, वही ब्रह्मचारिणी हैं। शारदीय व वासन्तिक नवरात्र की द्वितीया तिथि को इनका दर्शन होता है।

तृतीयं चन्द्रघण्टेति

महिषासुर के द्वारा स्वर्गलोक पर अधिकार कर लेने पर देवताओं को वहाँ से पलायन करना पड़ा। देवता पुन: स्वर्ग की प्राप्ति हेतु त्रिदेवों के शरणापन्न हुए। क्रुद्ध

माता चन्द्रघण्टा देवी

सभी देवताओं के तेज से एक अद्वितीय तेजोमयी नारी आविर्भूत हुई – **'एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा।'** विधाता की विधि के अनुसार महिषासुर की मृत्यु नारी के द्वारा ही सम्भव थी। उन देवीमूर्ति को देवताओं ने अपने आभूषणों, वस्त्रों व आयुधों से सज्जित कर असुर-संहार हेतु प्रार्थना की। देवराज इन्द्र ने तब – **'ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात्।'** घण्टा को सर्ववाद्यमय कहा जाता है। इस घण्टावादन के द्वारा देवी ने असुरों की शक्ति का हरण कर लिया तथा यही घण्टा शरणागत भक्तों के पूर्वकृत सभी पापों का हरण करनेवाला है –

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत्।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव।।

अतएव ऐसे प्रचण्ड शक्तिशाली घण्टा को धारण करने के कारण ही इन्हें चन्द्रघण्टा कहा जाता है। कालिका पुराण में इस नाम का उल्लेख मिलता है – **'चन्द्रघण्टा यस्याः'** जिनके कराधृत घण्टा प्रचण्ड शब्दकारी हो। दुर्गाप्रदीप के टीकाकार ने चन्द्रघण्टा शब्द का अर्थ इस प्रकार बताया है – **'चन्द्रो हस्तगतायां घण्टायां यस्याश्चन्द्रवन्निर्मला वा घण्टा'** तथा रहस्य आगमोक्त वाक्य – **'आह्लादकारिणी देवी चन्द्रघण्टेति कीर्तिता'** का अनुसरण कर अन्य टीकाकार ने **'घण्टयति प्रतिवादितया भाषते स्वस्याह्लादकारित्वाभिमाननेनेति चन्द्रघण्टा। चन्द्रापेक्षयाप्यतिशयेन लावण्यवतीत्यर्थः।** ऐसा अर्थ किया है।

चन्द्रघण्टा देवी का वाहन व्याघ्र है तथा देवी रक्त-वस्त्र परिधाना, सुवर्णवर्णा, नाना अलंकार विभूषिता, दशभुजा, दशप्रहरण-धारिणी हैं –

वन्दे वाञ्छितलाभाय चन्द्रार्धकृतशेखराम्।
व्याघ्रारूढां दशभुजाञ्चन्द्रघण्टां यशस्वनीम्।।
रक्ताम्बरपरिधानां मृदुहास्यां नानालङ्कारभूषिताम्। ...

इनका दर्शन नवरात्रि की तृतीया तिथि को होता है। ये काशी में चौक थाना की बायीं ओर लक्ष्मी चौतरा के मध्य चन्दु नाई की गली में सी.के. २३/२४ में स्थित हैं। लोहे के ग्रील लगा हुआ है, उसमें से ही भक्तगण माँ का दर्शन करते हैं। वेदी के मध्य एक सिंहासन पर रक्तवस्त्रावृता देवी तथा पार्श्व में एक बड़ा घण्टा विद्यमान है।

पिण्डजप्रवरारूढा चण्डकोपास्त्रकैर्युता।
प्रसादं तनुते मह्यं चन्द्रघण्टेति विश्रुता।।

कूष्माण्डेति चतुर्थकम्

कूष्माण्डा शब्द का अर्थ दुर्गाप्रदीप में बताया गया है – **'कुत्सित उष्मा सन्तापस्तापत्रयरूपो यस्मिन्संसारे स संसारो अण्डे मांसपेश्यामुदररुपायां यस्याः, त्रिविध-तापयुक्त संसारभक्षणकर्मीत्यर्थः।।'** अर्थात् कुत्सित संतापत्रय जिस संसार में व्याप्त है, वह संसार जिनके उदर में विद्यमान है, वही कूष्माण्डा त्रिविध तापयुक्त संसार का भक्षण करनेवाली हैं।

काशी में कूष्माण्डा देवी केवल दुर्गा नाम से ही सुप्रसिद्ध हैं। वर्ष की दोनों नवरात्रियों में तो यहाँ भीड़ होती ही है, किन्तु चतुर्थी तिथि को दर्शन का विशेष महत्त्व है। यहाँ पर एक सुबृहदाकार कुण्ड है – दुर्गाकुण्ड। इसी कुण्ड के नाम से इस स्थान को दुर्गा कुण्ड कहा जाता है। पौराणिक कथाओं से ज्ञात होता है कि कैसे देवी ने असुरों का संहार करने के बाद यहाँ विश्राम किया और अपने पसीने फेंके, जिससे इस कुण्ड का निर्माण हो गया। देवी-भागवत महापुराण में कथा आती है। काशी नरेश राजा सुबाहु ने अपनी बेटी शशिकला के विवाह के लिये स्वयंवर बुलाया। बाद में काशीनरेश को जब पता चला कि राजकुमारी वनवासी

माता कूष्माण्डा

राजकुमार सुदर्शन से प्यार करती थी, तो उन्होंने उसका विवाह गुप्त रूप से राजुकमार से करवा दिया। जब अन्य राजाओं को विवाह के बारे में पता चला, तो वे क्रोधित हो गए और काशी नरेश से युद्ध करने लगे। फिर देवी-भक्त सुदर्शन ने माँ दुर्गा से प्रार्थना की, जो स्वयं बाघ पर सवार होकर आईं और काशी नरेश और सुदर्शन के लिए युद्ध लड़ी। युद्ध के बाद काशीनरेश ने वाराणसी की रक्षा के लिए माँ दुर्गा से प्रार्थना की और देवी सदैव काशी के वाराणसी की दक्षिण सीमा पर असि नदी के तट पर काशी के रक्षार्थ सदैव के लिये विद्यमान हो गईं।

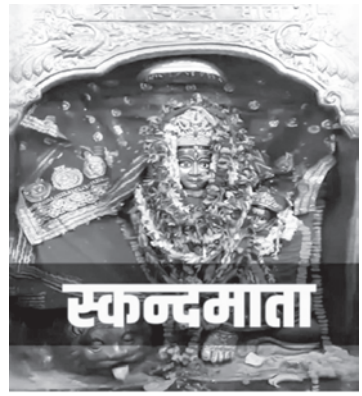

स्कन्दमाता मंदिर, वाराणसी

माँ का मन्दिर लालपत्थरों से निर्मित बहुचुड़ाओं से विशिष्ट नागर शैली में निर्मित बहुत बड़ा है। प्रवेश द्वार पर ही माँ की ओर मुख किये नतमस्तक सिंह-मूर्ति है। तीन ओर से खुला हुआ नाट मन्दिर है, जिसके सामने छोटे से गर्भगृह में विराजमान पश्चिममुखी देवी कूष्माण्डा अथवा दुर्गाजी हैं। सिंहासनारोहित, सर्वांग बहुमूल्य पट्ट वस्त्रों व अलंकारों से परिवृत, केवल त्रिनयनी स्वर्णिम मुखमण्डल ही दृष्टिगोचर होता है। देवी का विग्रह दो हाथ ऊँचा है। देवी का विग्रह कालेपत्थरों से निर्मित है। व्याघ्रासीना अष्टभुजा दुर्गामूर्ति है। दुर्गासप्तशती में आता है कि किस प्रकार दुर्गम नामक दैत्य का विनाश करने के कारण दुर्गा नाम से देवी प्रसिद्ध हुईं। ऐसी भगवती का नित्य दर्शन करना चाहिए –

सुरासम्पूर्णकलशं रुधिराप्लुतमेव च।
दधाना हस्तपद्माभ्यां कूष्माण्डा शुभदास्तु मे।।

पंचम स्कन्दमातेति

स्कन्द अर्थात् कार्तिकेय। देवसेनापति भगवान कार्तिकेय की माता होने के कारण स्कन्दमाता हैं। प्रदीप टीकाकार के अनुसार भगवती से उत्पन्न महर्षि सनत कुमार का ही अपर नाम स्कन्द है – '**सनत्कुमारस्य भगवतीवीर्यादुद्भूतस्य स्कन्द इति संज्ञा।**' जिनके उदर से जन्म लेना ज्ञानियों की अभिलाषा हो, वैसी शुद्धा देवी स्कन्दमाता के नाम से परिचित हैं।

काशी के जैतपुरा अंचल में जे ६/३३ पर बागेश्वरी मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध इनका मन्दिर है। मन्दिर के प्रथम तल पर बागेश्वरी अश्वारूढ़ा देवी विराजमान हैं, जिनका मन्दिर वर्ष में केवल दो दिवस ही खुलता है। द्वितल पर सामने नाटमन्दिर में देवी का वाहन सिंह देवी की ओर मुख किये हुए विद्यमान है। गर्भमन्दिर के प्रांगण में प्रमाण आकार की काले पत्थर की सिंहवाहना चतुर्भुजा देवी मूर्ति है। इनके दो हाथों में शतदल कमल है, नीचे के एक हाथ से पुत्र षडानन को बाई गोद में पकड़ी हुई हैं तथा दाहिने हाथ से अभय प्रदान कर रही हैं। इनके त्रिनेत्र श्वेत शंखों द्वारा निर्मित हैं।

सिंहासनगता नित्यं पद्माश्रितकरद्वया।
शुभदास्तु सदा देवी स्कन्दमाता यशस्विनी।।

षष्ठं कात्यायनी

ऋषि कात्यायन ने अम्बिका को पुत्री रूप में प्राप्त करने के लिए तपस्या की। देवी ने उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर कहा कि देवताओं की कार्यसिद्धि हेतु वे उनके तपोबल से आविर्भूत होकर उनकी सेवा ग्रहण करेंगी। इसके बाद महिषासुर के द्वारा आतंकित हो देवताओं ने महाशक्ति की आराधना की तथा उन सभी के सम्मिलित क्रोध-तेज के द्वारा एक देवी-मूर्ति की सृष्टि हुई तथा देवों ने उन्हें नाना अस्त्र-शस्त्र, परिधान व अलंकारों से सज्जित कर, महिषासुर वधार्थ प्रार्थना की। ये सारी घटनायें हिमालय स्थित ऋषि कात्यायन के आश्रम में घटीं तथा उन्हें दी हुई प्रतिश्रुति के अनुसार भाद्र कृष्ण चतुर्दशी को देवी प्रकट हुईं। इसके पश्चात् सप्तमी, अष्टमी व नवमी, इन तीनों में कात्यायन ऋषि द्वारा पूजा ग्रहण कर देवी ने महिषासुर का वध किया। कात्यायन द्वारा पूजित

कात्यायनी माता मंदिर वाराणसी

होने के कारण ही देवी कात्यायनी नाम से विख्यात हुई।

कात्यायनीं दशभूजां महिषासुरघातिनीम्।
नमामि वरदां देवीं सर्वदेवनमस्कृताम्।।

द्वापर युग में भी देवी कात्यायानी का नाम सुना जाता है – '**वज्रे कात्यायनी परा**'। गोपिकाओं ने नन्द-नन्दन को पति रूप में पाने हेतु कात्यायनी व्रत किया था तथा पूजा मन्त्र था –

कात्यायनि माहामाये महायोगिन्यधीश्वरी।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः।।

काशी में सी.के. ७/१५८ भगवान आत्मवीरेश्वर मन्दिर के गर्भगृह में ईशान कोण की दीवारों पर दशभुजा महिषमर्दिनी देवी कात्यायनी स्थित हैं। शक्ति शिव के सन्निधान में अवस्थित हैं। सम्भवत: देवी का पृथक् मन्दिर पहले था, किन्तु मुसलमानों के आक्रमण के समय देवी को छिपाकर भगवान विश्वेश्वर की आत्मा वीरेश्वर शिव के मन्दिर में स्थानान्तरित कर पूजा-सेवा होने लगी। मन्दिर के द्वितल पर पुजारी रहते हैं तथा ऐसे कई मन्दिर हैं, जहाँ से देवताओं को आक्रान्ताओं से बचाने के लिए पुजारी अपने घरों में ले गये थे। सम्भवत: यहाँ भी यही हुआ है।

चन्द्रहासोज्ज्वलकरा शार्दूलवरवाहना।
कात्यायनी शुभं दद्याद् देवी दानवघातिनी।।

सप्तमं कालरात्रीति

काशी विश्वनाथ कॉरिडोर से बिल्कुल सटे, अन्नपूर्णा मन्दिर के ठीक पीछे कालिका गली डी. ८/१७ में देवी कालरात्रि का मन्दिर है। मन्दिर के छोटे गर्भगृह में केवल पुजारी के बैठने की ही जगह है। दर्शनार्थी बाहर से ही दर्शन करते हैं, वहाँ से देवी विग्रह २-३ हाथ की दूरी पर है तथा अति सुन्दर दर्शन होता है। काशी में देवी महाकाली रूप में परिचित व पूजित हैं।

श्रीमत्सुरासुराराध्यचरणाम्बुरुहद्वयाम्।
चराचरजगद्धात्रीं कालिकां प्रणमाम्यहम्।।

काफी बड़ी काले पत्थर की दण्डयमान काली प्रतिमा है। देवी के विशालकाय मुख का देवी चामुण्डा के साथ समानता है। शरीर की तुलना में मुख अति विशाल है तथा त्रिकोणीय है। उस पर दो विराट निमग्ना-चक्षु हैं। त्रिनेत्र भी अति बृहदाकार हैं तथा विशालकाय लालमुखों से लटकती रक्तवर्ण की लोल जिह्वा है। सिर पर विशाल रजत मुकुट है और रक्तवर्ण के सुन्दर बनारसी पट्टवस्त्र से सर्वांग आच्छादित है। चारों हाथों में खड्ग, मुण्ड, वर और अभय धारण की हुई हैं। वेदी पर शिवजी की आकृति अंकित है। वाराणसी में ये काफी जाग्रत हैं तथा शारदीय व चैती; दोनों नवरात्रों की सप्तमी तिथि को इनके दर्शन के लिये काफी भीड़ होती है। इसके अलावा यहाँ महाष्टमी व दीपावली की अमावस्या को भी विशेष पूजा होती है। दीपावली की रात्रि को तन्त्रशास्त्रों में कालरात्रि कहा जाता हैं। प्राचीन काल में यहाँ पशु-बलि भी होती थी तथा तन्त्राभिषिक्त पुजारी ही पूजा करते थे। किन्तु अब साधारण स्मार्त क्रम से ही पूजा होती है।

भगवान श्रीरामकृष्ण के अनुसार कालरात्रि आदिशक्ति हैं, जीव-जगत की नित्य रात्रि व निद्रा हैं, यही मोहरात्रि तथा प्रलयकाल में महारात्रि और अन्त में कालरात्रि हैं। महारात्रि में जगत का विलय होता है। उस समय स्रष्टा मात्र ही जाग्रत रहते हैं तथा कालरात्रि में वे भी निद्रामग्न होते हैं अर्थात् योगनिद्रा में रहते हैं। उस समय केवल आद्याशक्ति महामाया, सृष्टि बीज की पोटलियाँ बाँधे जगी रहती हैं। इसलिए योगनिद्रा ही कालरात्रि हैं। दुर्गा सप्तशती में मधु-कैटभ वध के प्रसंग में इन्हीं योगनिद्रा को 'त्वं स्वाहा, त्वं स्वधा...' इत्यादि कहकर सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी ने प्रसन्न किया

है। ऐसी देवी को हमारा शतकोटि प्रणाम –

एकवेणी जपाकर्णपूरा नग्ना खरास्थिता।
लम्बोष्ठी कर्णिकाकर्णी तैलाभ्यक्तशरीरिणी।।
वामपादोल्लसल्लोहलताकण्टकभूषणा।
वर्धन्मूर्धध्वजा कृष्णा कालरात्रिर्भयङ्करी।।

महागौरीति चाष्टकम्

अष्टमी की देवी महागौरी हैं। काशीपुराधीश्वरी माहेश्वरी अन्नपूर्णा ही महागौरी हैं। काशीखण्ड में ये भवानी के नाम से परिचित हैं। विश्वनाथ मन्दिर के समीप ही इनका सुप्रसिद्ध मन्दिर है, जिसका संचालन दशनामी सम्प्रदाय के पुरी नामक

महागौरी माता मंदिर, वाराणसी

संन्यासीवृन्द करते हैं। रामेश्वर पुरी जी के ब्रह्मलीन होने के बाद अब शंकर पुरी जी यहाँ के महन्त हैं। गर्भगृह में ढाई-तीन फीट ऊँची वेदी के ऊपर पश्चिममुखी देवी की मूर्ति विराजमान है। सर्वांग वस्त्रालंकृता तथा केवलमात्र स्वर्ण मुकुट के साथ मुखौटे से ढका मुख ही दृष्टिगोचर होता है। मुखौटे के पीछे शिलामूर्ति है। शारदीय नवरात्र में अष्टमी तिथि को माँ की विशेष पूजा के अलावा धनतेरस से अन्नकूट तक चार दिन व्यापी महोत्सव होता है और अग्रहायण मास में नवान्न सहित धान शृंगार होता है। धनतेरस के समय चार दिन केवल द्वितल पर स्थित स्वर्ण अन्नपूर्णा का पट सर्वसाधारण के लिए खोला जाता है। मध्य में भवानी महागौरी अन्नपूर्णा अन्न-प्रदानरता हैं। उनके दक्षिण भाग में सामने नृत्य मुद्रा में दण्डायमान एक हाथ में त्रिशूल व दूसरे में भिक्षापात्र लिए भिक्षुरूपी शिव हैं तथा दोनों ओर श्रीदेवी व भूदेवी, मतान्तर से लक्ष्मी व सरस्वती हैं –

अन्नपूर्णे सदापूर्णे शंकर-प्राणवल्लभे।
ज्ञान-वैराग्यसिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वति।।

भोलेनाथ को वरण करने के लिए तपस्या करते-करते देवी का शरीर शुष्क व कृष्णवर्णा हो गया। एक बार विश्वेश्वर ने उनका उपहास करते हुए उन्हें काली कहा, जिसके फलस्वरूप पराम्बा कैलास त्याग कर तपस्यारत हो गईं। उनके शरीर के कोष खुल गये और शुभ्ररजतवर्णा देवी मूर्ति प्रकाशित हुई। शिवजी ने उनके ऐसे शशि-उज्ज्वल स्वरूप को देखकर मनाते हुए उन्हें महागौरी की संज्ञा दी। ऐसा किसी-किसी पुराण में वर्णन मिलता है। अन्य वर्णन आता है कि शिवजी ने स्वयं उनके कृष्ण-वर्ण शरीर को गंगाजल में परिष्कृत कर विद्युत वर्ण महागौरी किया।

श्वेते वृषे समारूढ़ा श्वेताम्बराधरा शुचिः।
महागौरी शुभं दद्यान्महादेवप्रमोददा।।

नवमं सिद्धिदात्री

नवरात्र की नवमी तिथि को दर्शनीय नवदुर्गा का अन्तिम स्वरूप माँ सिद्धिदात्री का है। जीव दो प्रकार के होते हैं – भोगमुखी और त्यागमुखी। भोगमुखी पुरुष वित्त, पुत्र, नाम-सम्मान, यश, प्रतिष्ठा जैसी सिद्धियों की महत्त्वाकांक्षा रखते हैं, तो त्यागमुखी भक्ति व मोक्ष की। देवी दोनों प्रदान करती हैं। देवी माहात्म्य में राजा सुरथ व समाधि वैश्य का आख्यान आता है। दोनों ने भगवती की आराधना की, एक ने अतुल राज्य-सम्पद अर्जन किया तथा दूसरे ने तत्त्व-ज्ञान। देवी सिद्धिदात्री हैं, वे जीव-जगत को उनके प्रार्थनानुसार

सिद्धिदात्री माता मंदिर, वाराणसी

फल प्रदान करती हैं अर्थात् सिद्धि प्रदान करती हैं। इसीलिये श्रीशंकराचार्यजी ने प्रार्थना की है –

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः।।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं।
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम्।।

काशी में मैदागिन स्थित टाउन हॉल के दक्षिण सिद्धेश्वरी मोहल्ले में सिद्धमाता गली सी. के. ६०/२९ में द्वितल

पर स्थित हैं। ऊपर मंजिल पर देवी-वाहन महासिंह देवी की ओर मुख किए बैठे हैं। मातृविग्रह काले कोष्टि पत्थरों का है। सिंह पीठ पर विराजमान जगदम्बा चतुर्भुजा शंख, चक्र, गदा व पद्म धारण किये हुए हैं तथा त्रिनेत्र स्वर्ण के हैं। बनारसी साड़ी से सज्जित देवी सर्वालंकार विभूषित हैं।

सिद्धगन्धर्वयक्षाद्यैरसुरैरमरैरपि।
सेव्यमाना सदा भूयात् सिद्धिदा सिद्धिदायिनी।।

देवी के इन नवरूपों का प्रकाश मोक्षनगरी काशी में आज भी प्रतिष्ठित व पूजित है। वस्तुत: ये नौ देवियाँ नव कुण्डलिनी शक्तिस्वरूपा हैं, जिसका रहस्य तान्त्रिक ग्रंथों में सविस्तार भगवान शिव ने कहा है, जो अत्यन्त ही गुप्त तथा योगियों के द्वारा ही गम्य है। प्रथमत: योगीगण अपने मन को शैलपुत्री स्वरूप 'मूलाधार' चक्र में स्थित करते हैं। यहीं से उनकी योग साधना का प्रारम्भ होता है। द्वितीया के दिन साधक का मन 'स्वाधिष्ठान चक्र' में शिथिल होता है। देवी ब्रह्मचारिणी **'गौरवर्णां स्वाधिष्ठानस्थितां द्वितीयदुर्गां'** हैं। इस चक्र में अवस्थित मनवाला योगी उनकी कृपा और भक्ति प्राप्त करता है। तृतीया के दिन साधक का मन 'मणिपुर चक्र' में प्रविष्ट होता है। लोकवेद के अनुसार माँ चन्द्रघण्टा की कृपा से अलौकिक वस्तुओं के दर्शन होते हैं, दिव्य सुगन्धों का अनुभव होता है तथा विविध प्रकार की दिव्य ध्वनियाँ सुनाई देती हैं। ये क्षण साधक के लिए अत्यन्त सावधान रहने के होते हैं। नवरात्र के चौथे दिन कूष्माण्डा देवी के स्वरूप की उपासना की जाती है। इस दिन साधक का मन 'अनाहत' चक्र में अवस्थित होता है – **'भास्वरां भानुनिभामनाहतस्थितां चतुर्थदुर्गां'**। अत: इस दिन उसे अत्यन्त पवित्र और अचंचल मन से कूष्माण्डा देवी के स्वरूप को ध्यान में रखकर पूजा-उपासना के कार्य में लगना चाहिए। पाँचवें दिन का तन्त्रों में पुष्कल महत्त्व बताया गया है। इस 'विशुद्ध चक्र' में अवस्थित मनवाले साधक की समस्त बाह्य क्रियाओं एवं चित्तवृत्तियों का लोप हो जाता है। वह विशुद्ध चैतन्य स्वरूप की ओर अग्रसर हो रहा होता है। साधक का मन समस्त लौकिक, सांसारिक, मायिक बन्धनों से विमुक्त होकर पद्मासना माँ स्कन्द माता के स्वरूप में पूर्णत: तल्लीन होता है।

धवलवर्णा विशुद्धचक्रस्थिता पञ्चमदुर्गा त्रिनेत्रा।
अभयपद्मयुग्मकरां दक्षिणऊरुपुत्रधरां भजेऽहम्।।

षष्ठी को साधक का मन 'आज्ञा चक्र' में स्थित होता है। योगसाधना में इस आज्ञा चक्र का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस चक्र में स्थित मनवाला साधक **'स्वर्णवर्णामाज्ञाचक्रस्थितां षष्ठदुर्गां'** माँ कात्यायनी के चरणों में अपना सर्वस्व निवेदित कर देता है। परिपूर्ण आत्मोत्सर्ग करनेवाले ऐसे भक्तों को सहज भाव से माँ के दर्शन प्राप्त हो जाते हैं। सप्तमी के दिन साधक का मन 'सहस्रार' के भानुचक्र में स्थित रहता है। उसके लिए ब्रह्माण्ड की समस्त सिद्धियों का द्वार खुलने लगता है। भानुचक्र में स्थित साधक का मन पूर्णत: माँ कालरात्रि के स्वरूप में अवस्थित रहता है। उनके साक्षात्कार से मिलनेवाले पुण्य (सिद्धियों और निधियों विशेष रूप से ज्ञान, शक्ति और धन) का वह भागी हो जाता है। उसके समस्त पापों-विघ्नों का नाश हो जाता है और अक्षय पुण्य-लोकों की प्राप्ति होती है।

आठवें दिन महागौरी शक्ति की पूजा की जाती है, जिनका स्थान उनके शशी वर्ण के समान ही सोमचक्र में है –

पूर्णेन्दुनिभां गौरीं सोमवक्रस्थितां अष्टं दुर्गां त्रिनेत्राम्।
वराभीतिकरां त्रिशूलडमरूधरां महागौरीं भजेऽहम्।।

नौवें दिन भगवती सिद्धिदात्री की उपासना की जाती है। **'स्वर्णवर्णानिर्वाणचक्रस्थितां नवं दुर्गां'** का स्थान निर्वाण चक्र में है। अर्थात् इनकी कृपा से साधक निर्वाण प्राप्त करते हैं। निर्वाण चक्र में स्थित साधकों के अधीन अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व जैसी आठ सिद्धियाँ होती हैं। सृष्टि में कुछ भी उनके लिए अगम्य नहीं रह जाता है। ब्रह्माण्ड पर पूर्ण विजय प्राप्त करने की सामर्थ्य उनमें आ जाती है।

इस प्रकार शास्त्रों के प्रमाण के अनुसार हम कह सकते हैं कि नवरात्र में नवदुर्गा की उपासना आध्यात्मिक ज्ञान और मोक्ष मार्ग को प्रशस्त करता है। ऐसी देवी दुर्गा के चरणों में हमारी प्रार्थना आचार्य शंकर के सुरों से सुर मिलाकर एक ही है –

परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम्।।

जय माँ दुर्गा ○○○

स्वामी विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण से क्या सीखा?

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

संसार के सभी धर्मों का सम्मान करनेवाले हम हिन्दू लोग हैं। स्वामी विवेकानन्द सभी धर्मों का सम्मान करते थे। इसे विवेकानन्द जी ने कहाँ से सीखा? उन्होंने अपने गुरु श्रीरामकृष्ण देव के सान्निध्य में बहुत-सी बातें सीखीं। एक दिन श्रीरामकृष्ण देव भक्तों से चर्चा कर रहे थे। किसी भक्त ने पूछा, महाराज संसार में इतने धर्म हैं, किन्तु क्यों सब एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते रहते हैं? कोई कहता है मेरा धर्म ठीक है, कोई कहता है मेरा धर्म ठीक है, एक-दूसरे की निन्दा करते हैं। श्रीरामकृष्ण देव ने कहा – एक तालाब है। उस तालाब में एक मुसलमान भाई पानी पीता है, वह उसे 'आब' कहता है। हिन्दू पानी पीता है, तो उसको 'पानी' कहता है, कोई दूसरा व्यक्ति उसको 'जल' कहता है। एक अंग्रेज पानी पीने जाता है, तो उसको 'वॉटर' कहता है। सभी उसे अलग-अलग नामों से पुकारते हैं, किन्तु वस्तु एक ही है।

पानी का कार्य है प्यास बुझाना। तो जो मुसलमान 'आब' कहकर पानी पीता है, उसकी प्यास बुझे और हिन्दू अगर जल कहकर पानी पिये तो उसकी प्यास न बुझे, ऐसा हो सकता है क्या? नहीं हो सकता है। जो पानी पीयेगा, उसकी प्यास बुझेगी। जिस प्रकार पानी के अलग-अलग नाम हो सकते हैं, पर उसका गुण एक है – सबकी प्यास बुझाना। उसी प्रकार ईश्वर के अलग-अलग नाम हैं, जो उनका नाम लेगा, उसे शान्ति मिलेगी। जिस दिन भगवान हमको मिलेंगे, हमारे मन में शान्ति होगी, हम आनन्द से रहेंगे। इसलिए श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, 'जितने मत उतने पथ'। संसार में जितने मार्ग हैं, सभी भगवान के पास जाने के लिये हैं। इसलिए उसके बारे में कोई लड़ाई-झगड़ा नहीं करना चाहिए।

इस सिद्धान्त का व्यवहार कैसे करें? कैसे हमारे जीवन में भगवान आयें? कैसे हमको आत्म-शान्ति मिले? अपनी आत्मा का दर्शन हो या भगवान का दर्शन हो। श्रीरामकृष्ण देव का अवतार यही दिखाने के लिये हुआ था।

आप जहाँ जिस स्थिति में हैं, वहीं रहकर अपने धर्म का पालन कर सकते हैं। आपको अपनी दिनचर्या में, अपने रहन-सहन में, अपने खान-पान में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है। परिवर्तन करने की आवश्यकता है अपने मन में, अपने विचारों में।

एक दिन की बात है। श्रीरामकृष्ण देव दक्षिणेश्वर में हैं। यह स्थान कलकत्ता से छह-सात किलोमीटर दूर है। यह बहुत सुन्दर मन्दिर है। इसे रानी रासमणि ने बनवाया है। उसी मन्दिर में रहकर श्रीरामकृष्ण देव माँ काली की पूजा करते थे, माँ काली के पुजारी थे। एक दिन जब वे पूजा कर रहे थे, तब उन्हें लगा कि अच्छा, मैं इस मूर्ति में पूजा कर रहा हूँ, तो क्या ये पत्थर की मूर्ति है? क्या मैं पत्थर की पूजा कर रहा हूँ? अगर पत्थर है, तो पत्थर की पूजा करने से क्या लाभ? पर जैसा कहा गया है कि जगज्जननी माँ काली की मूर्ति है, तो इसमें माँ जरूर होंगी। उनके मन में आया कि नहीं-नहीं, मैं पत्थर की मूर्ति की पूजा नहीं कर रहा हूँ, मैं तो साक्षात् माँ काली की पूजा कर रहा हूँ, पर मुझे दर्शन क्यों नहीं देती?

श्रीरामकृष्ण देव ने माँ काली से व्याकुल होकर प्रार्थना की – 'माँ, मैंने ऐसा सुना है, मेरे पहले तूने बहुत-से भक्तों को दर्शन दिये हैं। तूने रामप्रसाद नाम के भक्त को दर्शन दिये, कमलाकान्त नाम के भक्त को दर्शन दिये और भी बहुत से भक्त हो गये हैं, जिनको तूने दर्शन दिये। मुझे क्यों नहीं दर्शन देती है? वे रो-रो कर पुकारने लगे, माँ दया कर, माँ मुझे दर्शन दे, मुझे और कुछ नहीं चाहिये। मैं तेरा अबोध

बालक हूँ। मैं ज्ञानहीन, भक्तिहीन, साधनहीन, भजनहीन हूँ। माँ, मुझे सिखा दो, कैसे तुझे पुकारूँ? तेरे दर्शन के बिना मैं नहीं रह सकता हूँ। इस प्रकार व्याकुल होकर दिन-रात रोते रहते थे। जैसे मनुष्य पेट की कठिन पीड़ा में, शूल पीड़ा में तड़पता है, वैसे ही श्रीरामकृष्ण देव तड़पते रहते थे। संध्या हो जाती, तो कहते, ''माँ, आज का दिन बीत गया, शाम हो गयी और अभी तक तेरे दर्शन नहीं हुए।''

एक दिन श्रीरामकृष्ण देव मन्दिर में व्याकुल होकर रोते हुये कह रहे हैं कि माँ अभी तक मुझे तेरे दर्शन नहीं हुए, तो जीवित रहने से क्या लाभ ! इससे तो मर जाना अच्छा है। ऐसा विचार आते ही उन्होंने मन्दिर में टँगी खड्ग को उठा लिया और अपने गले पर चलानेवाले ही वाले थे कि तभी पत्थर की मूर्ति में से माँ साक्षात् प्रकट हो गयीं।

श्रीरामकृष्ण देव बाद में भक्तों को बताते हैं – 'तब मैंने देखा कि एक दिव्य प्रकाश मन्दिर में चारों ओर फैल गया। मुझे ऐसा लगा, जैसे पिघली हुई चाँदी का समुद्र आ रहा है और उसमें मैं निमग्न हो गया। तब मैंने माँ के दर्शन किये।' माँ के दर्शन करने के बाद उनकी इच्छा पूर्ण हुई। माँ के उनको दर्शन हुए। माँ का साक्षात्कार हुआ। उसके बाद जितने भक्त उनके पास आते थे, वे सबसे ईश्वर-चर्चा करते थे।

एक दिन रामकृष्ण देव दक्षिणेश्वर में बैठकर भक्तों से धर्म की चर्चा कर रहे थे। कुछ वैष्णव और शाक्त भक्त भी

श्रीरामकृष्ण देव का कमरा, दक्षिणेश्वर

बैठे थे। भक्तों ने पूछा, महाराज, वैष्णव धर्म का सार क्या है? तो ठाकुर भक्तों को समझाने लगे कि पहली बात, नाम में रुचि। अगर तुम वैष्णव होना चाहते हो, वैष्णव धर्म का पालन करना चाहते हो, तो भगवान के नाम में रुचि होनी चाहिए। प्रेमपूर्वक भगवान का नाम लेना चाहिए। प्रेम से भगवान का नाम लेने पर भगवान प्रकट होते हैं। 'हरि व्यापक सर्वत्र समाना प्रेम ते प्रकट होहिं मैं जाना।' भगवान के नाम में रुचि होनी चाहिए।

दूसरी बात, श्रीरामकृष्ण देव ने कहा कि वैष्णवों की सेवा। वैष्णव अर्थात् जो भक्त हैं, जो साधु हैं, जो भगवान का नाम लेते हैं, जिनकी नाम में रुचि है। ऐसे भक्तों की, साधुओं की सेवा करनी चाहिए।

तीसरी बात है जीवों पर दया। ज्यों ही उन्होंने जीवों पर दया, ऐसा कहा, उसी समय उनका मन गहन समाधि में डूब गया। भगवान श्रीरामकृष्ण देव हमेशा समाधि में डूबे रहते थे। सामान्य मनुष्य को करोड़ों जन्म की तपस्या के बाद, तब कहीं एक बार, समाधि का अनुभव होता है। किन्तु आपके-हमारे लिये श्वास लेना जितना सहज है, उतना ही श्रीरामकृष्ण देव के लिए समाधि में जाना सहज था। वे समाधि में चले गये, तब वहाँ भविष्य के विवेकानन्द भी बैठे थे। उस समय उनका नाम नरेन्द्रनाथ था। उनके कुछ गुरुभाई और गृहस्थ भक्त लोग बैठे थे। श्रीरामकृष्ण देव बहुत देर तक समाधि में रहे। धीरे-धीरे समाधि से उतर कर जब उनका मन साधारण भूमि पर आया, तो वे स्वयं से ही कहने लगे – 'छी: छी: कीटाणु कीट, तू कौन होता है दया करनेवाला? दया नहीं, शिवभाव से जीवसेवा।' इस बात को सबने सुना। नरेन्द्रनाथ ने कमरे से बाहर आकर अपने युवा साथियों से कहा, आज गुरुदेव ने कैसी अद्‌भुत बात कही है। यदि ईश्वर की कृपा रही, तो मैं सारे संसार में इसका प्रचार करूँगा, इसका उद्‌घोष करूँगा।

मित्रों ने आश्चर्यचकित होकर पूछा, कौन-सी ऐसी बात कह दी? उन्होंने कहा – गुरुदेव ने वन के, जंगल के वेदान्त को आज हमारे घर में ला दिया। कैसे ला दिया? आज तक हम दया से जीवों की सेवा करते थे। किन्तु उन्होंने कहा, हम कौन हैं दया करनेवाले? दया तो केवल एक ईश्वर ही कर सकते हैं। शिवभाव से जीवसेवा। वेदान्त क्या कहता है? प्रत्येक जीव ब्रह्म है। श्रीरामकृष्ण देव ने हमें एक नयी दिशा दिखाई – प्रत्येक जीव में, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, सभी में शिव है, किन्तु उसका सबसे अधिक प्रकाश मनुष्य की देह में है।

एक दूसरे प्रसंग में श्रीरामकृष्ण देव ने कहा कि जब भगवान की पूजा पत्थर की मूर्ति में, लकड़ी की मूर्ति में,

धातु की मूर्ति में मिट्टी-पत्थर-गारे से बने मन्दिर में हो सकती है, तो जो मनुष्य की जीवित देह है, साक्षात् मन्दिर है, क्या इसमें भगवान की पूजा नहीं हो सकती? वे स्वयं उत्तर देते हैं, इसमें भी भगवान की पूजा सर्वश्रेष्ठ रूप में हो सकती है। हम सब के हृदय में भगवान विराजमान हैं। गीता में भगवान ने कहा है – **ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति** – हे अर्जुन, सभी प्राणियों के हृदय में ईश्वर विराजमान है।

अब इस ईश्वर की कैसे सेवा करें? 'शिवभाव से जीवसेवा' करें। जो जीव हमारे आपके सामने आये, उसकी शिवभाव से सेवा करें। हमारा प्रथम परिचय हमारे परिवार से होता है। हमारी माँ, हमारे पिता, हमारी पत्नी, हमारे बच्चे, हमारे सम्बन्धी सबमें भगवान शिव विराजमान हैं। यदि हम अपने माता-पिता, परिवार-परिजन की सेवा उनमें शिव का दर्शन करते हुये शिवभाव से करें, उससे हमारी मुक्ति हो जायेगी।

एक दिन काशीपुर-उद्यान में स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरु से कहा – मुझे भी निर्विकल्प समाधि का अनुभव करा दीजिये। गुरु-कृपा से स्वामी विवेकानन्द को निर्विकल्प समाधि का अनुभव हुआ। उसमें उन्हें इतना आनन्द मिला कि वे बार-बार उस समाधि में जाना चाहते थे, किन्तु समाधि होती नहीं थी। एक दिन उन्होंने अपने गुरु से कहा – महाराज, मेरी इच्छा है कि मैं शुकदेव के समान दिन-रात समाधि में डूबा रहूँ और जब कभी समाधि से नीचे मन आये तो शरीर रक्षा के लिए थोड़ा-भोजन कर लूँ और पुनः समाधि में चला जाऊँ।

कोई भी गुरु अपने शिष्य की ऐसी इच्छा सुनकर बहुत प्रसन्न होता, उसको आशीर्वाद देता कि कितना अच्छा शिष्य है, ये दिन-रात समाधि में डूबा रहना चाहता है। पर अवतारवरिष्ठ भगवान श्रीरामकृष्ण आपके-हमारे लिये आये थे। उन्होंने नरेन्द्रनाथ को आशीर्वाद नहीं दिया, प्रशंसा नहीं की, अपितु उनका धिक्कार किया – 'छीः छीः, नरेन्द्र तेरी ऐसी क्षुद्र बुद्धि ! कहाँ तो मैं सोचता था, तू एक विशाल वटवृक्ष के समान होगा, जिसकी छाया में हजारों लोग विश्राम लेंगे और तू इतना स्वार्थी निकला कि अपने ही समाधि के आनन्द में डूबा रहना चाहता है? इससे भी एक ऊँची स्थिति है और वह है सभी प्राणियों में ब्रह्म-दर्शन।'

परवर्ती काल में स्वामी विवेकानन्द जी ने रामकृष्ण संघ की स्थापना की, जिसे आज आप 'रामकृष्ण मठ' और 'रामकृष्ण मिशन' के नाम से जानते हैं, जिसका मैं एक संन्यासी सदस्य हूँ और लक्ष्मीनिवासजी एक गृहस्थ सदस्य हैं। गृहस्थ और संन्यासी दोनों के लिये यहाँ स्थान है। स्वामी विवेकानन्द जी ने हमें एक नया धर्म दिया, वह है सेवाधर्म, एक नयी साधना की पद्धति सिखायी और वह पद्धति है – सेवा-पद्धति। ○○○

कविता

जय माँ दुर्गे दुर्गतिनाशिनी

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

जय माँ दुर्गे दुर्गतिनाशिनि, असुरविनाशिनि सिद्धिप्रदायिनि।
शक्तिप्रवर्धिनि मोक्षविधायिनि, कृपा करो माँ सद्गतिदायिनि।।
विश्वजननि माँ भवदुखहारिणि, त्रिगुणस्वरूपिणि मंगलकारिनि।
भक्तानुग्रहविग्रहरूपिणि, कृपा करो माँ शक्तिस्वरूपिनि ।।
महाकाल उर नित्यनिवासिनि, लक्ष्मीरूपिणि सन्मतिदायिनि।
भक्तजनार्चित आशिषवर्षिणि, कृपा करो माँ विश्वविमोहिनि।।
निराकार-साकारस्वरूपिणि, गुणातीत माँ करुणारूपिनि ।
वांछितफल अबिलम्ब प्रदायिनि, कृपा करो माँ नितसुखदायिनि।।

कविता

जय जननी जगदम्ब भवानी

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गया, बिहार

त्रिभुवन तारिणी शिव पटरानी, जय जननी जगदम्ब भवानी।
कर त्रिशूल-चक्र शुभ साजे, पुष्पमाल स्कन्ध विराजे ।
केहरि पृष्ठ सवार शिवानी, जय जननी जगदम्ब भवानी।
शुम्भ निशुम्भ असुरजन मारे, रक्तबीज दानव संहारे ।
चंड-मुंड रिपुदलन मृडाणी, जय जननी जगदम्ब भवानी।।
गणपति कार्तिकेय सुत तेरे, रिद्धि-सिद्धि आवत तव प्रेरे ।
बुद्धि विवेक सकल गुण खानी, जय जननी जगदम्ब भवानी।।
सकल लोक तुम्हरो यश गावे, तुम्हरे कृपा मुक्ति वर पावे ।
सुर-नर-मुनि सबके कल्याणी, जय जननी जगदम्ब भवानी।।

देवी-तत्त्व

प्रो. डॉ. यज्ञेश्वर स. शास्त्री

पूर्व विभागाध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद

परमतत्त्व का देवी के रूप में उपासनाक्रम भारत में अति प्राचीन काल से चलता आ रहा है। इतिहासविदों का मानना है कि वेदकाल के पूर्व से ही देवी या शक्ति की उपासना भारत में प्रचलित थी। चालीस से अधिक देवियों के नाम वेदों में उपलब्ध हैं। वेदों में देवी की स्तुति के अनेक सूक्त मिलते हैं, जैसे – श्रीसूक्त, सरस्वती सूक्त इत्यादि। देवी या शक्ति की उपासना उपनिषदों में वर्णित परब्रह्म की स्त्री रूप में उपासना करना ही है। उपनिषदों में कहा है कि, परब्रह्म या परमात्मा का कोई लिङ्गभेद नहीं है। वह न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है। अपनी इच्छानुसार परमात्मा की आराधना किसी भी रूप में जैसे पुरुष, स्त्री रूप अथवा निष्कलरूप से की जा सकती है। इसलिए सनातन धर्म में पंचायतन (सूर्य, गणपति, अम्बिका, शिव, विष्णु) पूजा में देवी का भी एक प्रमुख स्थान है।

परब्रह्म परमात्मा एक ही है। परन्तु ऋषि व ज्ञानी लोग उस एक ही तत्त्व को शिव, विष्णु, काली, दुर्गा, गणपति इत्यादि नामों से पुकारते हैं। ऋग्वेद में कहा गया है – **'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'।** नामरूप आदि में भिन्न होते हुए भी, परमात्मा एक ही है। हमारे शास्त्र-ग्रन्थ बारम्बार कहते हैं कि भिन्न-भिन्न देवताओं में भेद-दृष्टि नहीं रखनी चाहिए। जो ब्रह्मा नाम से पुकारा जाता है, वही हरि है, जो हरि है, वही महेश्वर है। जिसको हम काली कहते हैं, वही कृष्ण है, वही राम है। देव और देवियों में अन्तर ही नहीं है। सकल जगत शिव-शक्तिमय है –

यो ब्रह्मा स हरिः प्रोक्त, यो हरिः स महेश्वरः।

या काली सैव कृष्णः स्यात् यः कृष्णः सैव कालिका।।
देवं देवीं समुद्दिश्य न कुर्यादन्तरं क्वचित्।
तत्तद्भेदो न मन्तव्यः शिवशक्तिमयं जगत्।।

तन्त्रशास्त्र में कहा गया है कि शिव, दुर्गा, विष्णु इत्यादि देवताओं में एकत्व मानना चाहिए। जो इनमें अन्तर या भेद देखता है, वह मूढ़मति घोर नरक में जाता है –

यथा शिवस्तथा दुर्गा या दुर्गा विष्णुरेव सः।
अत्र यः कुरुते भेदं स नरो मूढदुर्मतिः।।
देवी-विष्णु-शिवादीनां एकत्वं परिचिन्तयेत्।
भेदकृत् नरकं याति रौरवं नात्र संशयः।।

देवी भागवत में कहा गया है, वही चिरसुख और शान्ति पाता है, जो देवों में भेद नहीं देखता –

त्रयाणां एकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति।।

देवी आराधना का परिचायक विपुल साहित्य संस्कृत में रचा गया है। तंत्रशास्त्र के हजारों ग्रंथ देवी का स्वरूप, रहस्य, महत्त्व प्रकट करते हैं। श्रीमद्देवीभागवत जो भगवती भागवत नाम से भी प्रसिद्ध पुराण है, उसमें भी देवी की महिमा आख्यान और कथारूप में प्रस्तुत है। 'देवी भागवतं ज्ञेयं' भक्ति से ही देवी भागवत का रहस्य प्रकट हो सकता है, यही उक्ति इस विषय में प्रमाण है। हर एक व्यक्ति की योग्यता, इच्छा, रुचि के आधार पर भक्ति-मार्ग भिन्न-भिन्न हो सकता है, किन्तु सभी मार्गों का एक ही उद्देश्य है – परमात्म ज्ञान अथवा परमात्म साक्षात्कार। भारतीय वैदिक संस्कृति में प्रधान रूप में छह भक्ति मार्ग बताये गये हैं, जैसे – शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य और स्कन्द। सायणमाधव कहते हैं –

शैव च वैष्णवं शाक्तं सौरं गाणपतं तथा।
स्कन्दं च भक्तिमार्गस्य दर्शनानि षडेव हि।।

हमारी संस्कृति में किसी भी मार्ग का अनुसरण करने के लिए धार्मिक स्वतन्त्रता दी गयी है। सभी मार्ग सिद्धि के हेतु माने गये हैं।

परा और अपरा के रूप में भक्ति दो प्रकार की है। 'तत्त्वमसि', 'प्रज्ञानं ब्रह्म, 'अयमात्मा ब्रह्म' इत्यादि उपनिषद वाक्यों से प्रतिपादित जीव-ब्रह्मैक्य ज्ञान पाने के लिये श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना पराभक्ति है और पुराणों में वर्णित सगुणोपासना, पूजा, अर्चना, नाम-संकीर्तन, भजन इत्यादि अपराभक्ति मानी गयी है। यही सर्वसाधारण लोगों के लिए परमात्म-साक्षात्कार का सरल मार्ग है।

प्रसिद्ध श्रीमद्भगवद्गीता के सिवाय श्रीरामगीता इत्यादि अनेक गीताग्रन्थ रचे गये हैं। श्रीदेवी गीता भी उनमें से एक श्रेष्ठ ग्रन्थरत्न है। देवी उपासकों में यह एक अतिप्रिय नित्यपारायण का ग्रन्थ है। इसी प्रकार कई पुराणों में तथा तन्त्र ग्रन्थों में भी कई देवी गीता प्राप्त होते हैं। उनमें से देवी भागवत महापुराण के सप्तम स्कन्ध के दस अध्यायों में (अध्याय ३१-४०) वर्णित भी एक देवी गीता है। इसका महत्त्व इसलिए है कि देवी जगदम्बा ने स्वयं गिरिराज हिमालय और अन्य देवताओं के सामने प्रत्यक्ष होकर स्वकीय विश्वरूप दर्शन कराया और स्वशक्ति का रहस्य प्रकट करने के लिए इस गीता को कहा। यह गीता साक्षात् देवी-मुख से निर्गत शब्द ब्रह्म ही है। इसमें देवी का स्वरूप वर्णन है, आत्मतत्त्वनिरूपण है, देवी के विराट स्वरूप का दर्शन है, देवी के साक्षात्कार के साधन, ज्ञान, भक्ति क्रियायोगों का वर्णन है। ब्रह्मस्वरूप वर्णन, योगसिद्धि के प्रकार, भक्ति के स्वरूप, देवी के विविध स्थान (पीठ), विविध प्रकार के व्रतोत्सव, देवी की पूजा के प्रकार और बाह्य पूजा-विधियों की भी सुविस्तृत चर्चा है। वेदान्त दर्शन का, उपनिषदों का सार, सरलरूप में सभी के लिए सुगम्य रूप में यहाँ उपलब्ध है। इस प्रकार शक्तितत्त्व के बारे में देवी गीता एक विश्वकोश सदृश है।

देवी या आदिशक्ति को 'श्री दुर्गा' शब्द से पुकारा गया। इस दुर्गा को ऋषिगणों ने दस रूपों में देखा है, जिसे दशमहाविद्या कहते हैं। जैसे काली, तारा, षोडशी (त्रिपुरसुन्दरी), भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता धूमावती, बगलामुखी, मातंगी व कमलात्मिका। पार्वती, चामुण्डा, चण्डी, सावित्री, गायत्री, महालक्ष्मी, महासरस्वती सभी दुर्गा के ही विविध रूप हैं।

देवी ही परब्रह्मस्वरूपिणी हैं। परब्रह्म और भगवती में कोई भेद नहीं है। उपनिषदों में जिस ब्रह्मतत्त्व को नित्य शुद्ध बुद्ध, मुक्त परिपूर्ण, निर्गुण, निर्विकार, निर्विशेष, शुद्ध चैतन्य कहा गया है, वही देवी का निजस्वरूप है। वही सर्वचैतन्य रूप है, सर्वात्मक है। एक ही जल घट, वापी, सरोवर रूप उपाधिभेद से अनेक भासित होता है। उसी तरह उपाधि के

कारण अज्ञानी लोग परब्रह्म और पराशक्ति में भेद देखते हैं। वस्तुत: दोनों में कोई भेद नहीं है। वही सच्चिदानन्द रूप है। इस दुर्गा के स्वरूपज्ञान से भ्रमनिवृत्ति, अविद्यानिवृत्ति, द्वैतभाव का नाश होकर जीव-ब्रह्मैक्य ज्ञान होता है। संसार-भाव नहीं रहता। श्रीदुर्गा ही 'तत्त्वमसि' (तुम ही ब्रह्म हो) इत्यादि महावाक्यों में कहा गया तत् (ब्रह्म) पदार्थ है, वही चिद्रूपिणी हैं, त्वं पदार्थ भी हैं, अन्तरात्मा हैं, पंचकोशातीत हैं। जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति नामक अवस्थात्रय साक्षिणी हैं। देवी गीता में इन सिद्धान्तों का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

यद्ज्ञानाद् जगद् भाति रज्जुसर्पस्त्रगादिवत्।
यज्ज्ञानात् लयमाप्नोति नुमस्तां भुवनेश्वरीम्।।
नमस्तत्पदलक्ष्यार्थां चिदेकरसरुपिणीम्।
अखण्डानन्दरूपां तां वेदतात्पर्यभूमिकाम्।।
पञ्चकोशातिरिक्तां तां अवस्थात्रयसाक्षिणीम्।
नुमस्त्वं पदलक्ष्यार्थां प्रत्यगात्मस्वरूपिणीम्।।

(देवीगीता, १-५०-५२)

सृष्टि के पूर्व विद्यमान तत्त्व पराशक्ति है। वही शक्ति सृष्टि-स्थिति-लय के रूप में ब्रह्मा-विष्णु-महेशों का सृजन करती है। वही स्थावर जंगमात्मक समस्त अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड रचने के करण जगदम्बा या जगन्माता कहलाती है। समस्त देवता, प्राणी, वस्तुओं में वही शक्तिरूप में रहती है। इसलिए दुर्गा सप्तशती में कहा गया है –

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा।।

वही चेतनाशक्ति है, वही जड़ात्मिका शक्ति भी है – **चित्शक्तिः चेतनारूपा जड़शक्ति जड़ात्मिका।** ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर भी पराशक्ति की आज्ञा से ही, सृष्टि-स्थिति-संहाररूपी कार्य करते हैं। देवी की इच्छाशक्ति के बिना सृष्टि आदि कार्य सम्भव नहीं है। देवीभागवत में स्पष्ट कहा गया है –

ब्रह्मा सृजति अवति विष्णुरुमापतिश्च
संहारकारक इयं तु जने प्रसिद्धिः।
किं सत्यमेतदपि देवि तवेच्छया वै
कर्तुं क्षमा वयमजे तव शक्तियुक्ताः।।

श्रीविष्णु, देवी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं, ''यह बात लोगों में प्रसिद्ध है कि ब्रह्मा सृष्टि, विष्णु पालन और महेश्वर संहार करते हैं। परन्तु हे देवि ! तुम्हारी ही इच्छा से तुम्हारी ही शक्ति लेकर हम यह काम करने में समर्थ बनते हैं। स्वतन्त्र रूप में देवी की इच्छा और शक्ति के बिना त्रिमूर्ति भी कुछ कर नहीं पाते।''

वही दुर्गा या पराशक्ति विश्वात्मिका है। क्योंकि भगवती ही इस विश्व में अनेक रूप, गुण, शक्तियों से व्याप्त होकर अपनी माया शक्ति से लीलामय विचरण करती हैं। दृश्यमान जगत् में विविध प्रकार के सम्पत, बुद्धि, धृति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा, क्षमा, कीर्ति, शान्ति इत्यादि सभी पराशक्ति का ही रूप है। वह सर्वव्यापी है। समस्त जगत ही दुर्गा रूप है। वही एक अद्वैत तत्त्व है। सर्वव्यापी भगवती का सुन्दर वर्णन 'उमासहस्र' नामक ग्रन्थ में इस प्रकार किया गया है –

'पुष्प चन्दनादि से पूजा करते समय भगवती प्रतिमा में दिव्यरूप में वास करती हैं। स्तुति करते समय शब्दब्रह्म के रूप में, मन्त्रात्मिका होकर शब्दों में उनका साक्षात्कार होता है। चिन्तन के समय में ध्यान करते समय, वे हमारे अन्तरंग हृदय में व्याप्त होती हैं। उनके निजस्वरूप के बारे में जब हम सोचते हैं, विचार करते हैं, तब हमें पता लगता है कि भगवती सर्वगत हैं, अखिल विश्व में व्याप्त हैं, उनके सिवाय कुछ नहीं है –

अर्चनकाले रूपगता, संस्तुतिकाले शब्दगता।
चिन्तनकाले प्राणगता तत्त्वविचारे सर्वगता।।

भगवती के भक्तों का दृढ़ विश्वास है कि विश्वात्मिका जगज्जननी अपने भक्तों के सकल प्रकार के भय, दारिद्र्य, दुखादि का निवारण केवल स्मरण मात्र से ही कर सकती हैं। वे हमेशा माता के रूप में करुणापूर्ण दयार्द्र चित्त से भक्तों की सहायता करती हैं। उनके सिवा इस प्रकार की दया कोई नहीं कर सकता –

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्य-दुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽर्द्रचित्ता।।

(देवीमाहात्म्य)

देवी-गीता, जगज्जननी को साक्षात्कार कराने का एक प्रमुख साधन है। इस गीता के पारायण और मनन से देवी का रहस्य-ज्ञान होने में सन्देह नहीं है। ○○○

दुर्गा पूजा का आध्यात्मिक और वैज्ञानिक तथ्य

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो ! हम अक्टूबर के महीने में दुर्गा पूजा बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं। क्या आप जानते हैं, इन नौ दिनों का हमारे जीवन, शरीर, मन और समाज पर अध्यात्म के साथ वैज्ञानिक प्रभाव भी सम्मिलित है। तो आओ बच्चो ! हम इसका दूसरा पहलू भी जानें। देवी की उत्पत्ति भगवान शिव के द्वारा उत्पन्न दिव्य प्रकाश से हुई है, जो शक्ति का प्रतीक है। इसलिए उन्हें शिवशक्ति भी कहा जाता है। इनके रूप को हम माँ और शक्ति दोनों कहते हैं। माँ दुर्गा की दस भुजाओं में जो आयुध हैं, वे भक्तों में शक्ति, सुरक्षा और प्रगति का भाव संचय करते हैं। माँ दुर्गा की दस भुजाएँ भक्तों की सुरक्षा का प्रतीक हैं। देवी के चरणों में असुर और सिंह को भी दर्शाते हैं।

तो बच्चो, ये सब हमें क्या सिखाना चाहते हैं? मनुष्य के अन्दर जो दिव्यता और पवित्रता है, उसे हम भूल चुके हैं, तभी हमारे अन्दर जो दुर्गुण हैं, जैसे – काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ये बढ़ने लगते हैं। इन सब चीजों को हम असुर के रूप में दिखाते हैं। यह सांकेतिक है, इन नौ दिनों में हम पूजा, पाठ, उपवास के द्वारा साधना कर अपनी शक्तियों को बढ़ाकर इन विकारों से मुक्त होते हैं। जो उग्र या हिंसक प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण पा सकती है, वह शक्ति है। इनकी हम अलग-अलग रूपों – लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती, काली रूप में पूजा करते हैं।

१. दुर्गा अर्थात् दुर्गुणों का नाश करनेवाली शक्ति २. काली अर्थात् विकराल परिस्थिति का सामना करनेवाली शक्ति ३. उमा अर्थात् सबमें उमंग उत्साह भरनेवाली। ४. वैष्णवी अर्थात् विषयों (समस्या) को मिटानेवाली (५) संतोषी अर्थात् सबको सन्तुष्ट करनेवाली (६) लक्ष्मी अर्थात् ज्ञान और गुणरूपी सम्पत्ति से समृद्ध (७) सरस्वती अर्थात् ज्ञान और कला-संगीत की अधिष्ठात्री।

माँ दुर्गा की अष्ट आयुध-शक्तियाँ हैं – (१) सुदर्शन चक्र से अभिप्राय है अपने अन्दर की दुर्बलताओं का दर्शन कर उन्हें नष्ट करना। (२) त्रिशूल – मन, वचन, कर्म द्वारा विजय प्राप्त करने का चिह्न है। (३) शंख – सत्य-नाद करने का प्रतीक। (४) खड्ग – इससे ईर्ष्या, द्वेष, वासना जैसे असुरों को काटना। (५) धनुष-बाण – इसका तात्पर्य है अपने लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित कर पुरुषार्थ करना। (६) गदा – यह जीवन रूपी संघर्ष में माया से युद्ध कर उस पर विजय प्राप्त करने का प्रतीक है। (७) कमल पुष्प – अर्थात् कीचड़ जैसे संसार में रहते हुए भी कमल जैसा भक्ति-पुष्प खिलाते रहना। (८) ज्योति – यह आत्मिक दिव्यता की ज्योति को जगाये रखने का प्रतीक है। (९) ढाल – बुराइयों, शत्रुओं से स्वयं की रक्षा करने का प्रतीक (१०) वज्र – दृढ़ता का प्रतीक है। अपने कार्य और भक्ति में दृढ़ता।

दुर्गापूजा में कलश की स्थापना की जाती है। कलश ज्ञान के अमृत से परिपूर्ण होता है। दुर्गापूजा में हम दीप जलाते हैं और जागरण भी करते हैं। अर्थात् हम देहाभिमान भूलकर आत्म-ज्योति जलाने का अभ्यास करते हैं। दीपक को हम दीया भी कहते है। इस दीया का अर्थ है देना। दूसरों के प्रति प्रेम, करुणा, ममता, दया, क्षमा करने का दान देना, सब कुछ देना। इस प्रकार हम आत्म-ज्योति को जगाते हैं। दुर्गापूजा के अवसर पर हम व्रत रखते हैं, नियम-पालन करते हैं, उपवास भी करते हैं। व्रत अर्थात् विकारों पर विजय। उपवास का उद्देश्य है शरीर से ऊपर उठकर मन-बुद्धि से हमेशा उस दिव्य शक्ति के सान्निध्य में रहना। इन त्यौहारों को मनाने का वैज्ञानिक रहस्य भी है।

इस त्यौहार में लोग मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति का संचय करते हैं। भिन्न-भिन्न विधियों द्वारा यही शक्तियाँ पृथ्वी में संतुलन बनाये रखने में सहायता करती हैं। यह

शेष भाग पृष्ठ ४६९ पर

रामगीता (२/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

बालि और प्रभु श्रीराम के संवाद में भी यही सूत्र आपको प्राप्त होता है। बालि पर जब प्रभु के बाण का प्रहार हुआ और वह गिर पड़ा, तो भगवान श्रीराम बालि के सामने जाकर खड़े हो गये। उस समय बालि ने भगवान श्रीराम के सामने कुछ प्रश्न रखे। वह प्रश्न यह था कि ईश्वर का सारे शास्त्रों में लक्षण बताया गया है कि ईश्वर सम है – **समोऽहं सर्वभूतेषु (गीता ९/२९)**, **जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। (२/२१८/३)** तो मैं जानना चाहता हूँ कि 'मैं बैरी सुग्रीव पियारा' यह कैसे हो गया? आपको सुग्रीव प्रिय लग गया और मुझे आपने शत्रु समझा, तो क्या यह आपके समत्व के अनुकूल है? उसके बाद दूसरा संकेत धर्म को लेकर था। आपका अवतार हुआ है, यह मैं जानता हूँ।

अब रावण में और बालि में अन्तर है। रावण एक क्षण के लिये श्रीराम के विषय में तत्त्व की कल्पना करता है, पर तुरन्त बाद में उसे लगता है कि यह मेरी व्यर्थ की काल्पनिक धारणा थी। पर बालि निश्चित रूप से मानता है कि भगवान का अवतार हुआ है। राम अवतार हैं और उनके अवतार का उद्देश्य है। उद्देश्य क्या है? उसने उद्देश्य बताया –

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं।

आप ईश्वर हैं, धर्म की रक्षा के लिए आप आए हैं। किन्तु आपने स्वयं अधर्म किया।

मारेहु मोहि ब्याध की नाईं।। ४/८/५

आपने मुझे व्याध की तरह छिपकर मारा। तो ज्ञान की दृष्टि से भी आपका कार्य ठीक नहीं है, समत्व के विरुद्ध है और धर्म की दृष्टि से भी आपमें यह कमी दिखाई दे रही है। आप उसके मूल सूत्र पर ध्यान दें। साधारणतया लोग इस प्रसंग में पूछते हैं कि भगवान ने बालि को छिपकर क्यों मारा? बालि तो श्रीराम के उत्तर से संतुष्ट हो गया, पर ऐसे बुद्धिमान अभी भी हैं, जो भगवान के उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हैं। उर्दू में हमारे यहाँ कहावत है – 'मुदई सुस्त, गवाह चुस्त'। भगवान के उत्तर से बालि को संतोष हो गया। वह जिस स्तर का संवाद है, उसे गहराई से आध्यात्मिक प्रश्नों के संदर्भ में देखें, तो आपको लगेगा कि बालि का प्रश्न क्या था और भगवान ने जो उत्तर दिया, वह कितना सूक्ष्म था। वह सूत्र यह था – भगवान राम ने कहा कि तुम यह कहते हो कि आप ईश्वर हैं, आपका अवतार हुआ है और आप धर्म की रक्षा के लिये आये हुये हैं। इसका अर्थ तो यह है कि तुम मुझे जानते हो। जानते हो कि नहीं जानते हो? भगवान ने जो संकेत किया, वह यह था कि तुम्हें स्मरण होगा, जब तुम सुग्रीव की गर्जना को सुनकर लड़ने के लिये चलने लगे थे, तब तुम्हारी पत्नी ने कुछ कहा था। वैसे तो भौतिक अर्थों में भगवान राम वहाँ नहीं थे। वे तो दूर हैं, सुग्रीव उनके साथ हैं।र पर भगवान राम ने यहीं से संकेत किया और वह संकेत यह बताने के लिये है कि तुम यहाँ कह रहे हो कि मैं छिप गया, तुम तो जब चल रहे थे, तब से मैं तुम्हारे साथ हूँ। मैं वहीं खड़ा था और तुम अगर गहराई से विचार करोगे, तो तुम्हें लगेगा कि तुम्हारी पत्नी के मुँह से मैं ही तुम्हें चेतावनी दे रहा था। भगवान ने उस पर आरोप लगाया –

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना।

नारि सिखावन करसि न काना। ४/८/९

तुम्हारी पत्नी ने जब तुम्हें समझाने की चेष्टा की, तो तुम्हारा अभिमान इतना प्रबल था कि मैं इतना विद्वान हूँ, इतना ज्ञानवान हूँ कि मेरे सामने मेरी पत्नी क्या जानती है?

उसको कुछ पता नहीं है। तुमने उसकी बात नहीं मानी। तारा को बालि ने डरपोक कहा था –

कह बाली सुनु भीरु प्रिये ...। ४/७/०

यह सब संकेत तुम्हें मिला था। साधक की यह समस्या बहुत बड़ी होती है। साधक है कि नहीं बालि? ऐसे तो लगता है कि वह साधक नहीं है, पर अगर अन्तरंग दृष्टि से विचार करके देखिए, तो स्वर्ग के राजा इन्द्र के अंश से बालि का जन्म हुआ है। इन्द्र पुण्य का प्रतीक है। इन्द्र का पुत्र है बालि और बालि की विशेषता यह है कि वह रावण को हरा भी चुका है। अब इतिहास से हटकर उसके आध्यात्मिक अर्थों पर ध्यान दें। बालि ने रावण को अर्थात् माने मोह को पराजित कर दिया है। मोह को पराजित करने के बाद उसको यह विश्वास है कि यह व्यर्थ ही कहा जाता है कि श्रीराम आकर रावण पर विजय प्राप्त करेंगे। राम के बिना भी रावण पर विजय पाई जा सकती है? मैंने हरा दिया रावण को। ऐसे भी साधक कभी-कभी होते हैं। उनको कभी जब सफलता या किसी बुराई पर विजय प्राप्त होती है, तो वे विजय का श्रेय स्वयं को देते हैं। वे यह मानकर चलते हैं कि ईश्वर की कोई अपेक्षा नहीं है। बालि उन्हीं में से है। भगवान श्रीराम यह बताना चाहते थे कि तुम एक बार सोचो। तुम यह कहते हो कि आपने छिपकर मारा, पर दूसरी ओर सत्य तो दूसरा है। छिपने की कौन कहे, मैं तो अपने आपको दिखलाने के लिये इतना व्यग्र था, जब तुम सुग्रीव की ललकार सुनकर उससे लड़ने चले, तब तारा के मुँह से मैंने ही तुम्हें रोका था। तारा ने संकेत किया –

सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा।
ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा।।
कोसलेस सुत लछिमन रामा।
कालहु जीति सकहिं संग्रामा।। ४/६/२८

यह सब तुम्हारी पत्नी ने कहा। उसके बाद तुमने क्या किया? अगर तुम्हारे जीवन में सचमुच ज्ञान होता, तो तुम यह गलती नहीं करते। भगवान ने बड़ी सूक्ष्म व्याख्या की। आध्यात्मिक साधक को उस स्तर पर नहीं सोचना चाहिए, जैसा साधारण लोग सोचते हैं। इसका अभिप्राय क्या है? तुम विचार कर सकते थे कि पत्नी जो कुछ कह रही है, वह ठीक ही तो है। कहा भी उसने यही, बल्कि यह भी कहा। दो तरह के अभिमानी होते हैं। एक अभिमानी वह है कि किसी ने कुछ कहा और उसको काट दिया। रावण का यही स्वभाव था। मंदोदरी ने कुछ कहा, तो बस तुरन्त काट दिया और दूसरे प्रकार के जो कलाकार अभिमानी होते हैं, वे सीधे नहीं काटते, बल्कि सामनेवाले ने जो बात कही है, उससे और ऊँची बात कह देंगे। मानो यह सिद्ध कर दिया कि तुम क्या बता रहे हो, मैं तो इससे भी आगे की बात जानता हूँ। जब तारा ने समझाया, तो बालि ने कहा, तुम क्या जानती हो, वह ईश्वर है। शब्द वही जोड़ दिया, 'समदरसी रघुनाथ' श्रीराम तो ईश्वर हैं, धर्म की रक्षा के लिए आए हैं। ईश्वर का लक्षण है सम। वे सम हैं, तो मुझमें और सुग्रीव में भेद नहीं करेंगे। लेकिन उसको लगा कि इसमें अपना एक दूसरा तर्क भी जोड़ दूँ। हमारा तर्क और प्रबल हो जाय। अच्छा, अगर तुम कह सकती हो कि श्रीराम ने सुग्रीव को भेजा है, तो वे मुझे मार भी सकते हैं। उसने भक्ति सिद्धान्त की सबसे ऊँची बात कह दी। भक्ति सिद्धान्त की सबसे ऊँची बात क्या है? भगवान जो कुछ करते हैं, वह कल्याणमय होता है। बालि ने यही कहा –

जौ कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होऊँ सनाथ। ४/७/०

अगर वे मुझे मार भी देंगे, तो मरने में क्या हानि है? वे मुझे मारेंगे, तो मैं सनाथ हो जाऊँगा। ये दोनों वाक्य भक्ति और ज्ञान के हैं। वे दोनों वाक्य बालि के मुख से निकले। लेकिन कवि की दृष्टि बड़ी गहरी है। भगवान राम के स्वरूप के विषय में जब यह वाक्य उसके द्वारा कहा गया, तो गोस्वामीजी बालि को ज्ञानी और भक्त की उपाधि नहीं देते। वे कहते हैं –

अस कहि चला महा अभिमानी। ४/७/१

यह साधारण अभिमानी नहीं, महाभिमानी है। वही मोह की ही बात है। जब वह श्रीराम के विषय में जानता है कि वे ईश्वर के अवतार हैं और वे धर्म की रक्षा के लिए आए हैं, तो उसको स्वत: यह तर्क समझ लेना चाहिए कि जो धर्म की रक्षा करने के लिए अवतार लेगा, वह अधर्म करनेवाले को दण्ड देगा। परन्तु मोह माने? जानकर भी विपरीत आचरण करना। इसी को कहते हैं मोह। अपने समर्थन में वह भक्ति-सिद्धान्त की दुहाई देता है। भक्ति-सिद्धान्त की बड़ी ऊँची भाषा का प्रयोग करता है। गोस्वामीजी मानो यह बताना चाहते हैं कि अगर अन्तर्जीवन को पूरी तरह से परिशुद्ध करना चाहते हैं, तो हमारे चिन्तन का पक्ष बहुत स्थूल नहीं होना चाहिए। बालि का प्रश्न बड़ा स्थूल और विरोधाभासी है। विरोधाभासी इसलिए कि अगर वह ईश्वर मानता होता, तो यह प्रश्न ही नहीं करता कि आपने छिपकर क्यों मारा। क्योंकि उसे तो पता ही है कि ईश्वर सारे संसार के जीवों

को मारता है, तो छिपकर ही तो मारता है। जितने मर रहे हैं, कहीं दिखाई देता है कि ईश्वर सामने आकर मार रहे हैं? तो उसे तो यह पूछना ही नहीं चाहिए था कि आपने मुझे छिपकर क्यों मारा? अगर वह यह कह रहा था कि आप सम हैं, तो फिर यह क्यों कहा कि मुझे मार सकते हैं? मानो वह स्वयं ही अपने अन्तर्द्वन्द्व को एक सैद्धान्तिक रूप दे देना चाहता है। तब भगवान श्रीराम ने कहा कि नहीं, मैं बिलकुल ही नहीं छिपा। क्यों?

मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। ४/८/१०

इसका अभिप्राय है कि यह जानते हुए भी जब तुमने सुग्रीव पर प्रहार किया, तब तो मैं तुम्हें मार सकता था। तुम पर बाण उस समय भी चला सकता था। लेकिन मैंने तो ऐसा नहीं किया। इतना होने के बाद, सुग्रीव के गले में मैंने माला पहनायी। इसका अर्थ था कि मैं तुम्हें बताना चाहता था। मैं तो व्यग्र था, तुम्हारी पत्नी की वाणी के द्वारा, अपने व्यवहार के द्वारा, माला के द्वारा, हर बार मैं तुम्हें संकेत दे रहा था। तुमने उस संकेत की अवहेलना कर सुग्रीव से युद्ध किया। तुम अपनी बात कहाँ भूल गये कि प्रभु मुझे मारेगें, तो मैं सनाथ हो जाऊँगा। अब कहाँ है तुम्हारी वह भक्ति? अब तो तुम नहीं कह रहे हो कि प्रभु आप ने बहुत अच्छा किया मुझे मारकर, मैं सनाथ हो गया। पत्नी के सामने तो ऊँचाई दिखाने के लिये – **जौ कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होऊँ सनाथ** कह रहा था। अब क्यों तुम्हारे मुँह से वह शब्द नहीं निकल रहा है कि आपने बड़ी कृपा की, आपने मुझे मारकर सनाथ कर दिया।

बालि में बुद्धिमत्ता थी। उसने गहराई से सोचा। उसका स्वयं में विरोधाभास यही है। प्रभु धर्म की रक्षा के लिये आए हैं, तो प्रभु स्पष्ट उत्तर दे देते हैं कि क्या तुमने अपने आचरण पर विचार करके देखा?

अनुज बधू भगिनी सुत नारी।
सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई।
ताहि बधें कछु पाप न होई।। ४/८/७-८

यहाँ पर भी मोह और अभिमान, दोनों एक साथ घटित होते हुए दिखाई देते हैं। उसको सचमुच इतना महत्त्व क्यों दिया गया? गोस्वामीजी ने कहा –

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। ७/१२०/२९

उसके पीछे उनका तात्पर्य क्या है? उसका अभिप्राय था कि गहराई से हमारे आचरण के पीछे कहीं न कहीं मोह की वृत्ति होती है, अज्ञान नहीं होता। अज्ञानी व्यक्ति अगर कोई अपराध करे, तो वह अपराध स्वाभाविक ही क्षम्य है। पर जानने के बाद भी अपराध करनेवाला व्यक्ति दण्ड का पात्र है। रामायण के जो विविध पात्र हैं, वहाँ सर्वत्र अभिमान के विविध रूपों का दर्शन कराया गया है। भाषण में तो यह कहना अत्यन्त सरल है कि अभिमान नहीं करना चाहिए। समझना भी सरल है, लेकिन अभिमान छोड़ना क्या इतना ही सरल है? श्रद्धेय स्वामीजी महाराज ने जो एक बात कही थी, वह और भी गहरी है। उन्होंने कहा कि कृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर के प्रति, वह जो वाक्य है, जिसमें उन्होंने कहा – 'ममता ही मृत्यु है और जो ममता से मुक्त हो गया, वही सच्चे अर्थों में अमृतत्व प्राप्त कर चुका है। ममता का अर्थ है मेरापन – मैं और मेरा।' आगे चलकर भगवान राम लक्ष्मणजी के सामने मैं और मेरेपन की इसी प्रकार व्याख्या करते हैं। उन्होंने कहा, लक्ष्मण, बहुधा लोग यह समझते हैं कि माया ऐसी कोई नारी है, जो व्यक्ति को बंधन में बाँध लेती है, पर सत्य तो यही है कि वह माया तो दो शब्दों में छिपा हुआ है। और वह पंक्ति आप पढ़ते हैं। भगवान राम ने क्या कहा? बोले –

मैं अरु मोर तोर तैं माया। ३/१४/२

मैं और मेरापन, अहंकार और ममता, यही वस्तुत: माया है। माया का बन्धन माने मैं और मेरेपन का बन्धन। किन्तु मैं और मेरेपन का बन्धन छूटना सरल है क्या? उसका कारण यह है कि जैसे किसी से कह दिया जाये कि समुद्र में कूद पड़ो, पर पानी का एक बूँद भी शरीर पर न लगे। यह तो बड़ी विडम्बना है। समुद्र में तो जल ही जल भरा हुआ है। उसमें जायें और पानी की बूँद न लगे, मानो एक ओर तो सारे अच्छे-बुरे व्यवहार का आधार तो मैं और मेरापन ही होगा। मैं के बिना आप बात कैसे करेंगे? किस भाषा में आप बात करेंगे? व्यवहार में जब आप विभाजन करेंगे, तो किस आधार पर करेंगे? उसमें आप मेरे शब्द का प्रयोग नहीं करेंगे क्या? इसका अर्थ है कि 'मैं और मेरापन' हमारे जीवन में ऐसे दो शब्द हैं, जिसके बिना हम बुरे तो क्या, अच्छे से अच्छा कार्य भी नहीं कर सकते। उसका एक सांकेतिक क्रम रामचरितमानस के विविध पात्रों के द्वारा बताया गया है। **(क्रमशः)**

दुर्गा-नाम की महिमा अपरम्पार

उत्कर्ष चौबे

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

ब्रह्मवैवर्त पुराण में दुर्गा शब्द का परिचय कराते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं – ''**सा दुर्गा मेनकाकन्या दैन्यदुर्गतिनाशिनी**'' अर्थात् ऐसी देवी दुर्गा हिमालय व मेनका की पुत्री दीनता व दुर्गति का नाश करती हैं। दुर्गति निवारण – **'दुर्गं नाशयति या नित्यं'** तथा दुर्गमासुर (काशी खण्ड के अनुसार दुर्गासुर) का नाश करने के कारण ही भगवती का नाम दुर्गा के रूप में त्रिलोक विख्यात हुआ है। ऐसी भगवान विष्णु की शक्ति नारायणी – **'ततो दुर्गा हरेः शक्तिर्हरिणा परिकीर्तिता'** का यह दुर्गा नाम परम मंगलमय व परमानन्ददायक होने के साथ ही साथ महामंत्र है।

रुद्रयामल तंत्र में भगवान रुद्र देवी से दुर्गा-नाम के माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहते हैं –

'तवर्गस्य तृतीयोवर्णः पञ्चमस्वरसंयुतः।
कवर्गस्य तृतीयोवर्णो वह्निस्तस्योपरि स्थितः।।
द्वितीयस्वरसंयुक्तं नामेदं परिकीर्त्तितम्।
आरोग्यस्य च सम्पत्तेर्ज्ञानस्य च महोदये।।
नामेदं परमो हेतुर्मुक्तये भवसङ्गिनाम्।
कलिकाले विशेषेण महापातकिनामपि।।
निस्तारबीजं विज्ञेयं नामसंस्मरणं प्रिये।
परदाररतोऽपि स्यात् परद्रव्यापहारकः।
सोऽपि पापात् प्रमुच्येत यदि स्यादतिपातकी।।
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्व्वङ्गनागमः।
एतेभ्योऽपि विमुच्येत यदि नाम स्मरेत् सुधीः।।

अर्थात् हमारे संस्कृत वर्णमाला में 'त' वर्ग का जो तृतीय वर्ण 'द' वह पंचम स्वर वर्ण अर्थात् 'उ' के साथ संयुक्त होकर 'क' वर्ग के भी तृतीय वर्ण अर्थात् 'ग' के साथ अग्नि के बीच 'र' मंत्र के रेफ को जोड़कर, द्वितीय स्वर वर्ण 'आ' के साथ जुड़कर आरोग्य, सम्पत्ति व ज्ञान को प्रदान करने वाला तथा **'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्'** के इस भवबन्धन के चक्र से पार कर मुक्ति

प्रदान करने वाला दुर्गा नाम है। कालिकाल में विशेष रूप से यह नाम महापातकों को भी निस्तार करनेवाला बीजस्वरूप नाममन्त्र है। परकीया गमन करनेवाले तथा पराई वस्तुओं का हरणकरने वाले पापी भी मुक्त हो जायेंगे, यद्यपि अतिपातक ही क्यों न हों। महापातक से भी भयंकर अतिपातक होता है, जैसे ब्राह्मण की हत्या करना, सुरापान करना, चोरी करना, तथा गुरु-पत्नी का गमन करना, ऐसे महापातकी कुकर्मी भी यदि इस भवसागर से पार करनेवाले दुर्गा नाम का स्मरण करेंगे, तो वे भी मुक्त हो जायेंगे।

इसी विषय को प्रतिपादित करते हुए भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने वचनामृत के प्रारम्भिक पृष्ठों में ही जगदम्बा के नाम पर विश्वास करने पर जोर देते हुए कहा है – 'जिसका ईश्वर पर विश्वास है, वह यदि महापातक करे, गो-ब्राह्मण-स्त्री-हत्या भी करे, तो भी इस विश्वास के बल से वह बड़े-बड़े पापों से मुक्त हो सकता है। वह यदि कहे कि ऐसा काम कभी न करूँगा, तो उसे फिर किसी बात का भय नहीं।'' इतना कहकर ही ठाकुरजी दुर्गा-नाम की महिमा विषयक 'आमी दुर्गा दुर्गा दुर्गा बले यदि माँ मरी' भजन गाते हुए भावाविष्ट हो गये। उक्त गान का भावानुवाद निरालाजी ने इस प्रकार किया है –

दुर्गा दुर्गा अगर जपूँ मैं, जब मेरे निकलेंगे प्राण।
देखें कैसे नहीं तारती हो, तुम करुणा की खान।।
गो ब्राह्मण की हत्या करके,
करके भी मदिरा का पान।
जरा नहीं परवाह पापों की,
लूँगा निश्चय पद निर्वाण।।

रुद्रयामल तंत्र में भगवान शिव कहते हैं कि दुर्गा-नाम के जप की महिमा मैं क्या ही कहूँ? दुर्गा-नाम का पाठ करने के कारण ही मुझे पंचानन कहा जाता है। अर्थात् भगवान के पाँचों मुख, जो पाँचों आम्नायों के प्रवर्तक हैं, उन सबके ज्ञान का स्रोत दुर्गा नाम का जप ही है।

दुर्गा एक महान शक्ति का नाम है। ब्रह्मा ने इस नाम के जप से सृजन की शक्ति प्राप्त की, शिवजी इस नाम के स्मरण से अपनी उच्च अवस्था तक पहुँचे और यह नाम स्व-स्व क्षेत्रों में सम्बन्धित देवताओं की सभी शक्तियों का रहस्य है। जो अन्तकाल में इस नाम के स्मरण से अपनी उच्च अवस्था तक पहुँचे और जो अन्तकाल में इस नाम का स्मरण करता है, उसे देवी के साथ सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है, भले ही वह जीवन भर महापापी रहा हो –

दुर्गानाम जपो यस्य किं तस्य कथयामि ते।
अहं पञ्चाननः कान्ते तज्जपादेव सुव्रते।।

भगवान शिव आगे कहते हैं कि दुर्गा नाम के समान संसार में कोई नाम नहीं है। इसलिए उत्तम साधकों द्वारा इसका सतत् स्मरण किया जाता है –

न दुर्गानामसदृशं नामास्ति जगतीतले।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्मर्तव्यं साधकोत्तमैः।।

साधकों द्वारा इसी नाम का जप क्यों किया जाता है? क्योंकि यह मुक्तिदायक नाम है। यह तारक मंत्र है। भगवान व्यास जैमिनी महर्षि से दुर्गा के नाम का महत्त्व बताते हुए कहते हैं कि भगवान शिव की वाराणसी पुरी जो मोक्षनगरी है, वहाँ जिस तारक मंत्र से भगवान भूतभावन विश्वेश्वर मुक्ति प्रदान करते हैं, वह दुर्गा नाम का तारक मंत्र है। इसी मंत्र से भगवान शिव वहाँ के शशक, मशक आदि निम्नतम कोटिगत योनियों को भी मुक्ति प्रदान कर देते हैं। भगवती दुर्गा का नाम मात्र ही सभी मंत्रों में मोक्ष प्रदान करनेवाला है। इसका प्रमाण भगवान श्रीरामकृष्ण एकाधिक बार वचनामृत में देते हैं। बार-बार वह दुर्गा नाम को तारक मंत्र बताते हुए, इस मंत्र में अनुराग होने की बात कहते हैं। नाम में अनुराग होने से ही सब कुछ होना सम्भव है।

भगवती दुर्गा को ही मोक्ष की अधिष्ठात्री कहते हैं, ऐसा शास्त्रों का वचन है। उनके दुर्गा नामक तारक मंत्र को भगवान शिव वाराणसी पुरी में मुक्तिदान हेतु जीवों को प्रदान करते-रहते हैं – **'दुर्गेति तारकं ब्रह्म स्वयं कर्णे प्रयच्छति।।'** पृथ्वी पर जितने भी प्राणी हैं, वे सब काशी में मरकर, भगवान शिव से दुर्गा का तारक नाम मंत्र सुनकर भगवती के अंक में मुक्ति प्राप्त करते हैं। भगवती इस तारक मंत्र में दीक्षित जीवों के कर्मपाश खोलकर परमगति प्रदान करती हैं, ऐसा शास्त्रों का वचन मात्र ही नहीं, अपितु अवतारवरिष्ठ श्रीरामकृष्ण द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन कर प्रमाणित है।

मायातन्त्र में दुर्गा नाम का प्रभाव बताते हुए कहा गया है कि द्वयायक्षर मंत्र दुर्गा का जप करनेवाले को किसी भी प्रकार का पाप नहीं लगता – **'दुर्गेति द्वयक्षरं मन्त्रं जपतो नास्ति पातकम्।।'** तो वहीं मुंडमाला तंत्र में भगवान सदाशिव दुर्गा नाम की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि दुर्ग शब्द के

अनेक अर्थ है – दैत्य, महाविघ्न, भवबंधन, कर्म, शोक, दुख, नरक, यमदंडानुसार कष्टकारी भोग और बार-बार जन्म लेना महान भय और रोग। आकार शब्द इन सबका नाश करनेवाला है। अत: इन सबका हनन करने के कारण ही देवी को दुर्गा कहा जाता है।

दुर्गो दैत्ये महाविघ्ने भवबन्धे कुकर्मणि।
शोके दु:खे च नरके यमदण्डे च जन्मनि।।
महाभये च रोगे चाप्याशब्दो हन्तृवाचक:।
एतान्हन्त्येव या देवी सा दुर्गा परिकीर्तिता।।

इसी प्रकार ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी भगवती के नाम का निर्वचन करते हुए महर्षि वेद व्यास जी कहते हैं कि दुर्गा नाम में दकार दैत्यों के नाशक का द्योतक है। 'उ'कार विघ्न नाश करनेवाला है, रेफ रोग नाशी है और 'ग'कार पापों का नाशक है। आ'कार भय और शत्रुओं का नाशक कहा जाता है। भगवती के दुर्गा नाम का स्मरण करने, बोलने या सुनने मात्र से, ये सब तुरन्त नष्ट हो जाते हैं –

दैत्यनाशार्थवचनो दकार: परिकीर्तित:।
उकारो विघ्ननाशस्य वाचको वेदसम्मत:।।
रेफो रोगघ्नवचनो गश्च पापघ्नवाचक:।
भयशत्रुघ्नवचनश्चाकार: परिकीर्तित:।।
स्मृत्युक्तिश्रवणाद्यस्या ऐते नश्यन्ति सत्वरम्।।

सर्वशास्त्रज्ञाता भगवान सदाशिव के अनुसार जो व्यक्ति नित्य दुर्गा-नाम का एक सौ आठ बार जप करता है, वह धनी, पुत्री-पुत्रवान्, ज्ञानी और चिरंजीवी होता है। हजार आठ जप करनेवाला धन, ज्ञान, रोग-मुक्ति, बंधन-मुक्ति, भय-पाप नाश और संतान आदि सब प्राप्त कर लेता है। नित्य दस हजार जपनेवाला निग्रहानुग्रह में सक्षम होकर कल्पवृक्ष के सामान सिद्ध हो जाता है। उसके क्रोध में मृत्यु और प्रसन्नता में परिपूर्णता होती है। नित्य लाख बार जप करनेवाले को तो ग्रह भी पीड़ित नहीं कर सकते। न उसका ऐश्वर्य घटता है, न उसे सर्पों का भय होता है, न ही उसे आग, जल, चोर, जंगल, पर्वतारोहण, सिंह, बाघ, भूत-प्रेत-पिशाच, शत्रु, दुष्टादि किसी का भी भय रह जाता है। चन्द्र-सूर्य के समान होकर वह कल्पों तक स्वर्ग में निवास करता है। हजारों वाजपेय यज्ञ का जो फल कहा गया है, वह फल मात्र दुर्गा नाम के जप से ही प्राप्त हो जाता है।

वाजपेयसहस्रस्य यत्फलं स्याद्वरानने।
तत्फलं समवाप्नोति दुर्गानामजपात्प्रिये।।

भगवान शिव अन्यत्र कहते हैं कि धन, यश, आयु, संतति, पोषण आदि का वर्धन करनेवाला दिव्य दुर्गा-नाम अन्य (देवों के) हजारों नामों के बराबर है –

धनं यशस्यमायुष्यं प्रजापुष्टिविवर्धनम्।
सहस्रनामभिस्तुल्यं दुर्गानाम वरानने।।

यहाँ तक कि लोकप्रसिद्ध भगवान राम का नाम भव-तारक है, किन्तु स्वयं वे श्रीराम ने भी इन तारिणी दुर्गा के नामों को जपकर ही मंत्र सिद्धि प्राप्त किया है –

मान्धातृप्रमुखा: सर्वे रामो दाशरथिस्तथा।
प्रजप्य तारिणीं दुर्गां मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयु:।।

इतना ही नहीं, रावण-वध के लिए श्रीराम को भी ब्रह्माजी के आदेशानुसार अकाल बोधन कर भगवती दुर्गा के ही शरणापन्न होना पड़ा था, ऐसा वर्णन बृहद्धर्म पुराण, कालिका पुराण, देवी पुराण, महाभागवत, महाकाल संहिता, काली विलास तंत्रादि ग्रन्थों में विस्तृत रूप से प्राप्त होता है। मुण्डमाला तंत्र में अन्यत्र कहा गया है कि दुर्गा का भजन, स्मरण और जप तत्काल मुक्ति देने वाला है –

भजेद्दुर्गां स्मरेद्दुर्गां जपेद्दुर्गां शिवप्रियाम्।
तत्क्षणाद्देवदेवेशि मुच्यते भवबन्धनात्।।

मार्कण्डेय पुराण में लिखित श्लोक – **'दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तो:। स्वस्थै: स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।।'** को तो हम सभी भलीभाँति जानते हैं। महामुनि मार्कण्डेय कहते हैं कि दुर्गा-नाम के स्मरण मात्र से ही भवानी, भक्तों के भय को हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषों द्वारा उनका चिन्तन करने पर उन्हें परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दुख, दरिद्रता व भयमुक्त करनेवाली देवी दुर्गा के सिवा और कौन हैं, जिनका मातृहृदय सदैव सबका मंगल करने के लिए मचलता रहता है? ऐसी विश्व प्रसविनी दुर्गा के स्मरण मात्र से हमलोगों का कल्याण हो जाता है।

पद्म महापुराण के अनुसार सोते-जागते, उठते-बैठते, हर समय दुर्गा जपनेवाला भवबन्धनों से मुक्त हो जाता है –

स्वपंस्तिष्ठन् व्रजन्वापि विलपन् भोजने रत:।
स्मरते सततं दुर्गां स च मुच्येत् बन्धनात्।।

इसका बड़ा ही सुन्दर भोजपुरी भावानुवाद पूर्वांचल में

लोकप्रिय है –

उठत-बईठत सगरो जप, दुर्गा माई के नाम हो।
खायेके-पीयेके उहे जुटईहें, बाटे उनके सब हाथ हो।।
सोवत-जागत भजते रह, दुर्गा माई के नाम हो।
मरत-जीअत कबो ना बिसराव, उहे मुक्ती के धाम हो।।

प्रात:काल में दो अक्षर के दुर्गा-नाम का जप करनेवाले की आपदाएँ वैसे ही नष्ट हो जाती हैं, जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार –

प्रभाते यः स्मरेन्नित्यं दुर्गा दुर्गाक्षरद्वयम्।
आपदस्तस्य नश्यन्ति तमः सूर्योदये यथा।।

इस दुर्गा नाम की महिमा बड़ी ही अपार है। यह मुक्तिदायक नाम है। यह सांसारिक दुर्गतियों से अपने भक्तों अर्थात् जपनेवाले को सहज तार देनेवाला सरल माध्यम है। श्रीरामकृष्ण-वचनामृत में भी ठाकुरजी ने यात्रा के दौरान दुर्गा नाम की महिमा विषयक एक उक्ति कही है, जिसका भावगत अर्थ इस प्रकार है –

''दुर्गा दुर्गा दुर्गा बोलकर जो भी पथ पर जाये।
शूलहस्ते शूलपाणि उसको बचाने आगे जायें।''

दुर्गा बोलकर यात्रा करने पर शूलपाणी महादेव स्वयं उसकी रक्षा करते हैं। बंगाल में तो यह दैनन्दिन जीवन का भाग है कि जब भी कोई कहीं जाता है, तो उसकी यात्रा की मंगल-कामना करते हुए 'दुर्गा-दुर्गा' कहते हैं। यहाँ तक कि ठाकुरजी की इस उक्ति को आत्मसात् कर आज भी रामकृष्ण संघ में तथा संघ से अन्तरंग सान्निध्यता होने के कारण हमलोग भी निर्विघ्न यात्रा हेतु जयध्वनि के अन्त में 'जय श्रीश्रीदुर्गा माई की जय' का उद्घोष करते हैं। वचनामृत में अन्यत्र हम पाते हैं कि भगवान श्रीरामकृष्ण दुर्गा-नाम को महिमा-मण्डित करते हुए साधक रामप्रसाद के एक भजन को गा रहे हैं –

'यद्यपि कखनो विपद घटे,
श्रीदुर्गा स्मरण करिओ संकटे।
ताराई दिये भार सुरथ राजार,
लक्ष असि आघाते प्राण गेल ना।''

अतएव भगवान कहते हैं कि कभी भी, किसी भी दशा में श्रीदुर्गा का नाम भूलो ना। भूल से भी इस तारणहार नाम को भूलो ना। जब कभी भी विपदाओं में पड़ो, तुरन्त ऐसे संकट की घड़ी में दुर्गा-नाम की नौका का आश्रय विपद-सागर में लो। यही वह ऐसी नौका है, जो इन आपदाओं से बचा सकती है, जैसा कि श्रीचण्डी में वर्णित राजा सुरथ की युद्ध क्षेत्र में लाखों तलवारों के भीषण प्रहारों से जीवन रक्षा कीं। इसलिए दुर्गा नाम को कभी नहीं भूलना चाहिये। इसके बाद विभु नामक एक राजपुत्र का प्रसंग संदर्भित हुआ है, जो सम्भवत: बृहद्धर्मपुराण, चण्डीमंगल व अभयामंगल में वर्णित श्रीमन्त सौदागर (श्रीपति सदागर) का है। पौराणिक कथानुसार श्रीमन्त के पिता धनपति सौदागर माँ चण्डी की उपेक्षा कर सिंहल द्वीप व्यापार करने चला जाता है तथा वहाँ के राजा द्वारा बंदी बना लिया जाता है। कई वर्ष पश्चात् उसकी भक्तिमती पत्नी उसके पुत्र श्रीमन्त को पिता की खोज में माँ चण्डी की पूजा-अर्चनादि कर भेजती है। श्रीमन्त श्रीदुर्गा का स्मरण कर पिता की खोज में यात्रा आरम्भ करता है। सागर-मार्ग में उसकी नौका डूब जाती है तथा माँ दुर्गा-नाम के अतुल प्रभाव के कारण समुद्र में डूबने पर भी उसके प्राण नहीं जाते। इन संकटों का सामना करते हुए वह गन्तव्य स्थल पर पहुँचता है। सिंहल द्वीप में युद्ध के दौरान लक्ष असि आघातों के बावजूद भी भगवती के अनुग्रह से वह विजयश्री के रूप में पिता व अर्जित धन सहित सिंहल द्वीप की राजकुमारी द्वारा पहनाये वरमाला पहने लौटता है। इसी गीत के प्रारम्भिक पदों में तन्त्रों में निर्दिष्ट समुद्र-मंथन के क्रम में भगवान शिव द्वारा कालकूट विष के पान करने तथा भगवती का तारा महाविद्या के रूप में अवतरित हो विश्वेश्वर को अपना पयपान करा कर, हलाहल की ज्वाला को शान्त कर नीलकण्ठ के रूप में आशुतोष के नव जीवन के रक्षण की ओर इंगित किया गया है।

श्रीदुर्गा स्मरणे समुद्र मन्थने,
विषपाने विश्वनाथ मरलो ना।
श्रीदुर्गा नाम भूलो ना।''

भगवती के इस दुर्गा-नाम का माहात्म्य कितना प्रभावशाली है कि भवानी ने इसे स्वयं अपने द्वारा ही प्रकाशित किया है। १९०१ में महामाया जब मातृत्व के प्रसार हेतु देवी श्रीमाँ सारदा के रूप में लीला करते हुए, स्वामीजी द्वारा अनुष्ठित मठ की प्रथम दुर्गापूजा के लिए बेलूड़ पधारी थीं, तब उनकी भागवती लीलानुसार अनायास ही घनघोर वर्षा, तूफान और साथ ही ओलावृष्टि होने लगी।

मातृ-सहचारियाँ, साधु-ब्रह्मचारी, भक्त व कर्मचारी सभी भयभीत हो गये कि दुर्गोत्सव के समस्त आयोजन पर पानी फिर जायेगा। तभी स्वामीजी की 'जेयन्तो दुर्गा' (जीवन्त दुर्गा) श्रीमाँ ने 'दुर्गा' नाम का अनवरत जप करना प्रारम्भ किया, जिसके अद्‌भुत प्रभाव से प्रलय सदृश आँधी-तूफान व भयंकर वृष्टि बंद हो गई।

तभी तो, पिच्छिला तन्त्र में – **'दुर्गानाम महामन्त्रः सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः'** कहकर दुर्गा नामक महामंत्र को सभी मंत्रों में उत्तम से भी अति उत्तम मंत्र कहा गया है। इस दुर्गा नाम के माहात्म्य को इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि आज भी जब हम 'कलि के अश्वमेध यज्ञ' दुर्गा महापूजा की षष्ठी तिथि को कल्पारम्भ के समय संकल्प लेते, तब संकल्प के पश्चात् ही 'षष्ठयां तिथावारभ्य महानवमीं यावद्' प्रत्येक दिवस अष्टोत्तरशत केवल 'दुर्गा' नाम के जप का संकल्प महापूजा के अंगस्वरूप लेते हैं। महापूजा में न जाने कितने ही वैदिक, तान्त्रिक व पौराणिक मंत्रों का अथाह पाठ व जप होता है। किन्तु इस नाम की इतनी महत्ता है कि माया बीजयुक्त मंत्रसहित स्वपुराणोक्त विधि अवलम्बित मंत्र के अनेकों बार जप के बाद भी दुर्गा-नाम का १०८ बार जप करना ही पड़ता है। इसीलिए भागवत में कहा गया है कि जीवन तभी सफल जानना चाहिए, जब दुर्गा नाम का स्मरण हो जाये – '**तदेव जन्मसाफल्यं दुर्गास्मरणमस्ति चेत्।**'

इसीलिए देवी अथर्वशीर्ष में स्तुति की गई कि उन दुर्गा देवी की, जो बड़ी दुर्गम हैं, उनको संसार सागर से डरा हुआ मैं प्रणाम करता हूँ, ताकि मुझे भी वह भवसागर से तार दें। इसी पर भगवान शिव कहते हैं कि –

स दीर्घायुः सुखी वाग्मी निश्चितं पर्वतात्मजे।
श्रद्धयाऽश्रद्धया वापि दुर्गानाम प्रसादतः।।

वही दीर्घायु है, वही सुखी है और वही वाक्‌पटु भी है, जिसने श्रद्धा से या अश्रद्धा से भी दुर्गा का नाम लिया है। अन्ततः इस महामंत्र दुर्गा-नाम के लिए नेति कहते हुए मुझे पवनदेव का कामदेव के प्रति कहा गया, यही वाक्य याद आ रहा है कि आपत्ति आ गई है, तो महामाया दुर्गतिनाशिनी दुर्गा का स्मरण करो, दुर्गा का स्मरण करो। जिसके फलस्वरूप प्रलयंकर के तीसरे नेत्र की ज्वाला से भस्म होकर भी वह अनंग हुए हैं।

पुनः मुण्डमाला तंत्रोक्त शिवजी के वचनानुसार – यह अचूक रहस्य है कि दुर्गा के ज्ञान के बिना किसी की पूजा और जप का कोई फल नहीं होता। श्रीरामकृष्ण देव भी दुर्गा प्रतिमा के रहस्य को उद्‌घाटित करते हुए आधार काष्ठ (काठमो) में स्थित अन्यान्य देव-विग्रह की उपस्थिति के विषय में कहते हैं कि देखो, जिसे भगवती दुर्गा की कृपा हो गई, उसे सभी कुछ प्राप्त हो गया, सभी की कृपा प्राप्त हो गई। उसे गणेश (निर्विघ्न कार्य), कार्तिकेय (पराक्रम व विजय), सरस्वती (ज्ञान), लक्ष्मी (धन) आदि सभी कुछ माँ दुर्गा की पूजा से ही प्राप्त हो जाते हैं।

दुर्गा हि परमो मंत्रो दुर्गा हि परमो जपः।
दुर्गा हि परमं तीर्थं दुर्गा हि परमा क्रिया।
दुर्गा हि परमा भक्तिदुर्गामुक्तिमहीतले।।

'दुर्गा' सर्वोच्च मंत्र है, 'दुर्गा' सर्वोच्च जप है। 'दुर्गा' सर्वोच्च तीर्थ और सर्वोच्च क्रिया है। वह परम भक्ति की प्रकृति और इस पृथ्वी पर सर्वोच्च मुक्ति की प्रकृति भी है। बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षमा, दया, पुष्टि, शान्ति, लक्ष्मी और मति, ये सभी वास्तव में दुर्गा हैं। सभी सर्वोच्च वैदिक और तान्त्रिक क्रियायें वास्तव में दुर्गा ही हैं, उनसे भिन्न नहीं हैं। 'दुर्गा' का जप भी उनसे भिन्न नहीं है, क्योंकि नाम व नामी दोनों अभिन्न हैं। माँ दुर्गा के चरणों की पूजा करो और दिन-रात सदैव माँ दुर्गा का स्मरण करो।

दुर्गा दुर्गेति दुर्गेति दुर्गानाम परं मनुम्।।
यो जपेत् सततं चण्डि ! जीवन्मुक्तः स मानवः।।
महोत्पाते महारोगे महाविपदि सङ्कटे।
महादुःखे महाशोके महाभयसमुत्थिते।
यः स्मरेत् सततं दुर्गां जपेत् यः परमं मनुम्।
स जीवलोके देवेशि ! नीलकण्ठत्वमाप्नुयात्।।

दुर्गा नाम ही परम आधार है, जो समस्त दुर्गतियों से निवारण करता है। महोत्पात, विषमशोक, महामारी प्रभृति महारोग, अत्यन्त विपदाओं व भयंकर संकट में सदैव दुर्गा नाम का स्मरण करते हुए महिषमर्दिनी के शरणापन्न होना चाहिए। जो भी श्रीचण्डी के इस दुर्गा नामक महामंत्र को सतत जपता है, वह जीवनमुक्त हो, इस लोक में नीलकण्ठ भगवान शिव के सायुज्य को प्राप्त हो जाता है। अतएव –

स्मर स्मर महामायां दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्।।
स्मर स्मर महामायां दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्।। ○○○

महान व्यक्तित्व की संगति का प्रभाव

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

मनोविकृति मन के द्वन्द्व, भ्रम, हताशा तथा अनियंत्रित भावनाओं से उत्पन्न होती है। इन प्रवृत्तियों को तब तक दूर नहीं किया जा सकता है, जब तक व्यक्ति जीवन में उच्च मूल्यों को आत्मसात् और व्यावहारिक रूप से उन्हें अपने जीवन में अंगीकार न कर ले। जब किसी व्यक्ति के पास एक उच्च आदर्श होता है और उसके द्वारा वह अपनी सभी गतिविधियों को नियंत्रित करता है, तो समझना कि उसके पास एक उपयुक्त जीवन शैली है। इसलिए हमें स्वयं को महान व्यक्तियों या उनके सन्देशों से जोड़ना है। उनका शुद्ध और पवित्र जीवन हतोत्साहित युवाओं के लिए प्रेरणा के प्रकाश स्तंभ के रूप में कार्य करेगा। जीवन में एक उच्च आदर्श को रखने की महत्ता है – एक महान व्यक्ति के प्रति प्रेम, जो स्वयं को दूसरों की सेवा में समर्पित करता है, हमें महान उद्देश्य प्रदान करता है और एक पवित्र उद्देश्य के प्रति दृढ़ निष्ठावान् बनाता है।

विलक्षण मानसिक अनुभव

प्रसिद्ध गायिका मैडम काल्वे १८९४ में शिकागो में थीं। वे पूरे विश्व में ओपेरा के लिए प्रसिद्ध थीं। दो महाद्वीपों के सबसे बड़े आकर्षण का केन्द्र काल्वे बन गई थीं। उन्हें उनके उत्साही प्रशंसकों के साथ-साथ समाज के उत्तमांश प्रसिद्ध व्यक्तियों ने भी देखा, जो विश्व को जीतने की होड़ में आगे बढ़ रहे उज्ज्वल सितारे के रूप में कार्य कर रहे थे। एक दिन सन्ध्या के समय वे ओपेरा में अपने अभिनय का प्रदर्शन कर रही थीं। लेकिन उन्हें मंच पर भय लगा और चक्कर आ गया। मध्यांतर के बाद वे मंच पर गईं और उन्हें घबराहट हुई, हालाँकि उनका पहला अभिनय बहुत ही सफल रहा। वे बहुत उदास हो रही थीं और उस रात उन्होंने अभिनय में भाग नहीं लेने पर विचार किया। वे अपने प्रसाधन कक्ष से मंच तक जाने में लड़खड़ा सकती थीं। वे स्थिर खड़ी रहीं जैसे कि उन्हें लकवा मार गया हो, लेकिन मंच प्रबन्धक ने उन्हें सम्भाला। परन्तु उन्होंने बहुत ही अच्छा गाया। अपने दूसरे प्रदर्शन के बाद, वे प्रसाधन कक्ष में वापस आकर, लगभग बेसुध हो गईं और उन्होंने प्रबन्धक से अनुपस्थित रहने की घोषणा करने के लिए कहा। उन्हें

साँस लेने में कठिनाई थी और वे बहुत उदास थीं। प्रबन्धक और उसके आसपास के लोग उन्हें अन्तिम अभिनय के लिए मंच तक ले गए और उन्होंने अभिनय को पूरा करने के लिए अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ प्रयास किया। उनका प्रदर्शन उनके पूरे कैरियर के सबसे उत्तम प्रदर्शनों में से भी श्रेष्ठ सिद्ध हुआ और जनमानस ने उनके लिए जोरदार तालियाँ बजाई। मंच से बाहर निकलने के बाद वे अपने कमरे की ओर भागीं और वहाँ बहुत लोगों को खड़ा देखा। उनका मन किसी आसन्न गम्भीर संकट की आशंका से भर गया था। दु:खद समाचार यह था कि उनकी एकमात्र प्यारी पुत्री की मृत्यु हो गई थी, जो उस अभिनय के दौरान जलकर मर गई थी। काल्वे बेसुध हो गईं।

आत्महत्या करने का प्रयास

काल्वे अपनी बेटी से बहुत स्नेह करती थीं। अब वे कैसे जी सकेगी? उनकी सफलता की अभूतपूर्व विजय फीकी पड़ गई थी। उन्होंने झील में छलाँग लगाकर आत्महत्या करके अपनी कष्टदायक पीड़ा को समाप्त करने का संकल्प लिया। अपने शुभचिन्तकों की प्रार्थनाओं के बावजूद वे असहाय होकर नदी में तिनके की तरह, भावनाओं के प्रवाह में बह गईं। स्वामी विवेकानन्द उस समय शिकागो में थे और उनके महान एवं उद्धारकारी विचारों का प्रचार-प्रसार चरम पर था। कई लोगों ने उनसे सहायता और मार्गदर्शन के लिए भेंट करने की माँग की। यह बात मैडम काल्वे को अच्छी तरह ज्ञात थी। उन्हें स्वामी विवेकानन्द की वैचारिक शक्ति के बारे में भ्रान्ति थी। इसलिए उन्होंने स्वामीजी से नहीं मिलने का विचार किया।

नियति का कार्य

काल्वे तीन बार आत्महत्या करने के लिए अपना घर छोड़कर झील की ओर चली गईं और हर बार नियति उन्हें अनजाने में स्वामीजी के घर की सड़क पर ले आई। हर बार उन्होंने स्वामीजी के साथ भेंट करने से मना कर दिया और अपने घर वापस चली गईं। अन्त में चौथी या पाँचवीं बार वे अनजाने में अचम्भित होकर स्वामीजी के घर आईं और एक कुर्सी पर बैठ गईं। वे मानो स्वप्न की अवस्था में थीं, तभी उन्हें बगल के कमरे से सान्त्वना भरी वाणी सुनाई दी, 'आओ मेरे बच्चे। डरो मत।' वे उठीं और स्वामीजी के पास गईं, मानो सम्मोहित हो गई हों।

यहाँ मैडम काल्वे की स्वामी विवेकानन्द के साथ पहली भेंट और स्वामीजी के उपदेशों का उनके जीवन पर पड़े गहरे प्रभाव का संस्मरण देना रुचिकर होगा।

मैडम काल्वे का संस्मरण

'एक ऐसे व्यक्ति को जानना मेरे लिए सौभाग्य और हर्ष का विषय है जो वास्तव में 'ईश्वर के साथ रहता था', एक महान व्यक्ति, एक सन्त, एक दार्शनिक और एक सच्चा मित्र। मेरे जीवन पर उनका प्रभाव गहरा था। उन्होंने मेरे समक्ष नये विचार प्रस्तुत किये, मेरे धार्मिक विचारों और आभासी आदर्शों को विस्तारित और एकीकृत करते हुए मुझे सत्य की व्यापक सोच दी। मेरी अन्तरात्मा उनका अनन्त आभार व्यक्त करेगी।'

एक बार जब मैडम काल्वे शिकागो में थीं, तब स्वामीजी व्याख्यान दे रहे थे; और चूँकि काल्वे उस समय मनोदैहिक विकार से ग्रस्त और बहुत उदास थीं। स्वामीजी ने काल्वे के कुछ मित्रों की कैसे सहायता की थी, यह देखकर उन्होंने स्वामीजी से भेंट करने का निर्णय लिया। जब काल्वे कमरे में उपस्थित हुईं, तो एक क्षण के लिए वे स्वामीजी के सामने चुपचाप खड़ी रहीं। स्वामीजी ध्यान की उत्कृष्ट मुद्रा में बैठे थे, उनकी आँखें नीचे की ओर थीं। कुछ देर रुकने के बाद ऊपर देखे बिना ही वे बोले, 'मेरे बच्चे', 'तुम्हारा जीवन कितना कष्टकारी है; शान्त रहो; यह आवश्यक है।'

तब शान्त स्वर में, बिना किसी कष्ट के अलिप्त भाव से स्वामीजी ने, जो काल्वे का नाम तक भी नहीं जानते थे, उनकी व्यक्तिगत समस्याओं और चिन्ताओं के बारे में बताया। उन्होंने उन चीज़ों के बारे में बताया जिनके बारे में काल्वे के अति निकट के मित्र भी नहीं जानते थे। वह अपौरुषेय, अलौकिक लग रहा था।

अन्ततः काल्वे ने पूछ ही लिया, 'तुम्हें यह सब कैसे पता है?' 'किसने तुमसे मेरे बारे में बताया?'

'स्वामाजी ने उन्हें अपनी शान्त मुस्कान के साथ ऐसे देखा जैसे वे कोई बच्चा हो, जिसने कोई मूर्खतापूर्ण प्रश्न पूछा हो।

'मुझे आपके बारे में किसी ने भी नहीं बताया है', स्वामीजी ने धीरे से उत्तर दिया। 'क्या आपको लगता है कि यह बताना आवश्यक है?' 'मैंने आपको एक खुली किताब की तरह पढ़ा।' अन्ततः काल्वे का वहाँ से जाने का समय हो गया। जैसे ही काल्वे वहाँ से उठकर जाने लगी, स्वामीजी ने कहा, 'तुम्हें सब कुछ भूल जाना चाहिए।' 'आनन्द में मग्न रहो और प्रसन्न रहो। अपने स्वास्थ्य का निर्माण करो। दुःख के आने पर जीवन में एकाकीपन मत लाओ। अपनी भावनाओं को किसी शाश्वत अभिव्यक्ति के रूप में रूपान्तरित करो। तुमको जीवन में इसकी आवश्यकता है। तुम्हारे कौशल को इसकी जरूरत है।'

'मैडम काल्वे स्वामीजी को छोड़ कर चली गईं। वे स्वामीजी के शब्दों और उनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुईं। ऐसा लगता है कि मानो उन्होंने काल्वे के मस्तिष्क से उनकी सभी गहन जटिलताओं को खाली कर दिया है और उसके स्थान पर अपने उन्नत और शान्त विचारों को रख दिया है। उनके प्रभाव के कारण काल्वे एक बार फिर से प्रसन्न और जीवन्त हो गयीं। यह स्वामीजी की शक्तिशाली इच्छाशक्ति के कारण ही सम्भव हुआ। स्वामीजी ने किसी सम्मोहक या मंत्रमुग्ध करने वाले माध्यम का उपयोग नहीं किया। यह उनके चरित्र, उनके उद्देश्य की पवित्रता और तीव्रता थी। मैडम काल्वे ने जब स्वामीजी को अच्छी तरह से समझा, तो देखा कि स्वामी विवेकानन्द किसी के विशृंखल विचारों को शान्तिपूर्ण स्थिति में लाते हैं, ताकि हर कोई उनके शब्दों, विचारों और बातों पर पूर्णता और एकाग्रता से ध्यान दे सके।'

युवाओ, कई बार जीवन की इस यात्रा में मन में द्वन्द्व और चिन्ता के कारण हताशा, भ्रम तथा विभ्रमित कर देने वाली भावनाओं से विकृत मानसिकता का उदय होता है।

शेष भाग पृष्ठ ४७७ पर

प्रश्नोपनिषद् (४९)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

शंका – ज्ञानस्य ज्ञेय-अव्यतिरिक्तत्वात् ज्ञेय-अभावे ज्ञान-अभाव इति चेत्।

– (वैनाशिक के मत में) चूँकि ज्ञान तथा ज्ञेय एक (अभिन्न) हैं, तो ज्ञेय (विषय) के अभाव में ज्ञान का भी अभाव माने तो!

समाधान – न; अभावस्य अपि ज्ञेयत्व-अभ्युपगमाद्-अभावो अपि ज्ञेयो अभ्युपगम्यते वैनाशिकै: नित्यश्च तद् अव्यतिरिक्तं चेत् – ज्ञानं नित्यं कल्पितं स्यात् तद्-अभावस्य च ज्ञानात्मकत्वात् – अभावत्वं वाङ्-मात्रम्-एव न परमार्थतो अभावत्वम् अनित्यत्वं च ज्ञानस्य। न च नित्यस्य ज्ञानस्य अभाव-नाम-मात्र-अध्यारोपे किञ्चित्-न-छिन्नम्।

– नहीं, विनाशवादियों ने (यदि) 'अभाव' को ज्ञान का विषय माना है, तो कभी उस 'ज्ञान' का अभाव नहीं हो सकता, अत: यदि ज्ञान उस ज्ञेय से अभिन्न है, तो वह उनके मत में नित्य होने की कल्पना होगी। अभाव ज्ञान-स्वरूप होने के कारण, अभावत्व कहने मात्र से ही, ज्ञान का अभाव या अनित्यता पारमार्थिक (वास्तविक) नहीं होगा। नित्य ज्ञान पर 'अभाव' शब्द का आरोप मात्र करने से हमारा कुछ नहीं बिगड़ता।

शंका – अथ अभावो ज्ञेयो अपि सन् ज्ञान-व्यतिरिक्त इति चेत्।

– 'अभाव' यदि ज्ञान का विषय होते हुए भी ज्ञान से भिन्न हो तो!

समाधान – न तर्हि ज्ञेय-अभावे ज्ञान-अभाव:।

– तब तो ज्ञेय का अभाव होने पर भी ज्ञान का अभाव नहीं हो सकता।

शंका – ज्ञेयं ज्ञान-व्यतिरिक्तं न तु ज्ञानं ज्ञेय-व्यतिरिक्तम् इति चेत्।

– ज्ञेय, ज्ञान से व्यतिरिक्त (भिन्न) है, परन्तु ज्ञान, ज्ञेय से भिन्न नहीं है, यदि ऐसा कहें तो!

समाधान – न; शब्द-मात्रत्वात्-विशेष-अनुपपत्ते:।

– नहीं, क्योंकि यह कथन शब्द मात्र होने के कारण, इससे कोई विशेषता सिद्ध नहीं होती।

ज्ञेय-ज्ञानयो: एकत्वं चेद्-अभ्युपगम्यते ज्ञेयं ज्ञान-व्यतिरिक्तं ज्ञानं ज्ञेय-व्यतिरिक्तं न इति तु शब्द-मात्रम्-एतद्-बह्नि: अग्नि-व्यतिरिक्त:। अग्नि: न वह्नि-व्यतिरिक्त इति यद्वत् अभ्युपगम्यते।

– यदि तुम ज्ञेय और ज्ञान की अभिन्नता मानते हो, तो ''ज्ञेय, ज्ञान से भिन्न है; परन्तु ज्ञान, ज्ञेय से भिन्न नहीं'' – यह कथन वैसे ही शब्द मात्र है, जैसे यह मानना कि ''वह्नि, अग्नि से भिन्न है; परन्तु अग्नि वह्नि से भिन्न नहीं।''

ज्ञेय-व्यतिरेके तु ज्ञानस्य ज्ञेय-अभावे ज्ञान-अभाव-अनुपपत्ति: सिद्धा।

इससे यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान ज्ञेय से भिन्न है और (ज्ञेय का अभाव हो, तो भी) ज्ञान का अभाव नहीं माना जा सकता।

शंका – ज्ञेय-अभावे अदर्शनात् अभावो ज्ञानस्य इति चेत्?

– ज्ञेय वस्तु के अभाव होने पर, ज्ञान का बोध न होने से, ज्ञान का अभाव है, यदि ऐसा कहें तो?

समाधान – न सुषुप्ते ज्ञप्ति-अभ्युगमात्। वैनाशिकै: अभ्युपगम्यते हि सुषुप्ते अपि ज्ञान-अस्तित्वम्।

– नहीं बनेगा, क्योंकि सुषुप्ति में ज्ञप्ति (सामान्य ज्ञान) का अस्तित्व माना गया है। (शून्यवादी) वैनाशिकों ने, सुषुप्ति में भी ज्ञान का अस्तित्व स्वीकार किया है।

शेष भाग पृष्ठ ४६९ पर

शिल्पशास्त्र में महिषासुरमर्दिनी दुर्गा

डॉ. अरुपम सान्याल

शोध-योजना सदस्य, टीका लेखन परियोजना,

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

भारतीय संस्कृति अपने कला और साहित्य के कारण सम्पूर्ण विश्व में एक आश्चर्य का विषय है। विश्व के प्राचीन सभ्यताओं में अनेक प्रकार की कलाओं का विकास हुआ है, परन्तु भारतीय कला और संस्कृति अपनी निरन्तरता के लिए अनन्य रूप से जानी जाती है। संस्कृति और सभ्यताओं में कला अपने विकास के चरम पर पहुँचने पर भी निरन्तरता के अभाव हेतु विलुप्त हो गई। भारतीय कलाविषयक विविध शास्त्र हैं। चौसठ कला के विषय में शुक्रनीतिसारादि नीतिशास्त्र और इस प्रकार धर्मशास्त्रों के ग्रन्थ में विस्तृत सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। मूर्तिनिर्माण भारत की अत्यन्त प्राचीन कला है। स्थापत्यशास्त्र, शिल्पशास्त्रादि के ग्रन्थों में मूर्ति-निर्माण के विषय में अनेक प्रकार की सूचनाएँ हमें प्राप्त होती हैं। वैदिकशास्त्रादि में हमें मूर्तिपूजा के विषय में प्रमाणादि भी प्राप्त होते हैं। सम्भवत: उसी समय शिल्पशास्त्र के परिशीलन की परम्परा प्रारम्भ हो चुकी होगी। वैदिक शास्त्रों में जो कल्पसूत्र हैं, उन कल्पसूत्र ग्रन्थों के परिशिष्ट भाग में हमें मूर्तिपूजा के संकेत मिलते हैं। बोधायन गृह्यसूत्र-परिशिष्ट नामक ग्रन्थ में विष्णुमूर्ति प्रतिष्ठा और उसके अभिषेक-पूजादि के विषय में वर्णन प्राप्त होता है। अत: इन परिशिष्ट ग्रन्थों की रचना के कालखण्ड में अवश्य ही मूर्तिपूजा प्रचलित थी।

दुर्गा देवी की मूर्ति इत्यादि के वर्णन हमें शास्त्रों में प्राप्त होते हैं। यद्यपि कुछ विद्वानों का मत है कि दुर्गा और महिषमर्दिनी पृथक् देवी थीं, परन्तु शिल्पशास्त्रों के ग्रन्थों में उस प्रकार का भेद दिखाई नहीं देता। वहाँ दोनों को एक दूसरे का पर्यायवाची ही माना गया है। विद्वानों का मत है कि मन्दिर-स्थापत्यशास्त्र की परम्परा यद्यपि अत्यन्त प्राचीन है, तथापि शैव और वैष्णव आगमों में पहले इस शास्त्र की चर्चा और भी सुस्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। अंशमत् नामक शैव आगमशास्त्र के काश्यप नामक उपागम में मूर्ति का वर्णन इत्यादि प्राप्त होता है। आगमशास्त्र और अन्यान्य शास्त्रों को कालखण्ड की दृष्टि से आधुनिक विद्वान गुप्तकाल और उसके परवर्तीकालीन मानते हैं। अत: संस्कृत शास्त्रों में देवी की प्रतिमा-लक्षण अर्वाचीन है, ऐसा कहा जाता है। परन्तु तमिल या द्राविड़ देशीय संगमसाहित्य जो पहली ईसवी से तीसरी ईसवी के हैं, वहाँ कोर्रवै या कोट्रवै या द्रविड़ नामक एक देवी की स्तुति और वर्णन प्राप्त होता है। देवी के वर्णन से यह प्रतीत होता है कि द्रविड़ भाषा के साहित्य में यह युद्धजय और शत्रुनाश की देवी के रूप में जानी जाने वाली कोर्रवै देवी, वस्तुत: महिषमर्दिनी दुर्गा ही हैं। शिलप्पदिकारम् नामक प्राचीन तमिल साहित्य के ग्रन्थ में देवी के वर्णन में उनके जटा-मुकुट, सर्प के अलंकार और अर्धचन्द्र से भूषित कहा गया है। देवी नीलकण्ठ हैं और बाघ के चर्म को वस्त्र पहनी हैं तथा हस्तीचर्म उनका अङ्गवस्त्र है। त्रिनेत्रा, चतुर्भुजा यह देवी शंख, चक्र, शूल

और खड्गधारिणी मूर्ति में हैं। द्रविड़ साहित्य में देवी का वाहन है – हिरण या सिंह। अत: साहित्य की दृष्टि से सम्भवत: यह प्राचीन निदर्शन है। इसके अतिरिक्त महाभारत में भी आर्या स्तव और अन्य एक-दो स्तुतियों में देवी को विन्ध्यवासिनी और शबर पुलिन्द आदि व्याधों की भी आराध्य देवी कहा गया है। देवी दुर्गा की प्रतिमाओं के पुरातात्त्विक निर्देश ईसा की प्रथम शताब्दी से ही मिलते हैं। मुख्यत: कुषाणकालीन महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमाएँ प्रचुरता से मिलती हैं। ध्यातव्य है कि देवी की चतुर्भुज और षड्भुज प्रतिमाएँ ही यहाँ हमें देखने को मिलती हैं। चतुर्भुज और षड्भुज महिषमर्दिनी प्रतिमायें गुप्तकाल तक भी मिलती हैं। हिन्दू धर्म में देवी-देवताओं का चतुर्भुज होना चार वेदस्वरूपत्व की ओर संकेत करता हैं और चार दिशाओं में उनके हाथ प्रसारित हैं, इसलिये देवता की सर्वव्यापकता भी द्योतित है। गुप्तकाल के परवर्ती समय में साहित्य और पुरातत्त्व दोनों क्षेत्रों में ही दशभुजा और उससे अधिक भुजायुक्त दुर्गा प्रतिमाओं का परिचय मिलता है। शिल्पशास्त्र में देवी दुर्गा के प्रतिमा-लक्षण के विषय में आगे विस्तारित रूप से हम चर्चा करेंगे।

शिल्पशास्त्र के प्राचीन रूप शैव और वैष्णव आगमों में मिलते हैं। शैव आगमों में दुर्गा देवी शिव परिवार के अन्तर्गत हैं। मन्त्रमार्ग के अनुसार शैवों के मन्दिरों में देवी दुर्गा की प्रतिमा रक्षक देवता के रूप में होती थी। यहाँ देवी दुर्गा यद्यपि पार्वती की ही स्वरूप हैं, तथापि मूल देवता की सहचरी या प्रधाना शक्ति के रूप में उनको हम नहीं पाते। अपितु परिवार या द्वारपाल रूप में कभी-कभी देवी दुर्गा की प्रतिमा देखी जाती है। वे शंख, चक्र, मुद्गर, शूल वज्र, पद्म, अभय और वरमुद्रा धारण की हुई हैं। ये देवी महिष के छिन्न सिर के ऊपर समपाद नामक भंगिमा में खड़ी है। अंशुमत् नामक शैव आगम ग्रन्थ में देवी दुर्गा को श्यामवर्ण-विशिष्ट और पीतवस्त्रधारिणी कहा गया है। यहाँ देवी का वर्ण और आयुधक्रम नारायण के आयुध और वर्ण के साथ समानता रखता है। इसके अतिरिक्त उनके दो कर-कमलों में शंख और चक्र हैं, दूसरे हाथ में वर-मुद्रा और कट्यवलम्बन की मुद्रा है। यहाँ देवी को सिंहारूढ़ा बताया गया है अथवा महिष के छिन्न सिर वा कमल के ऊपर भी समपादस्थानक मुद्रा में देवी के विग्रह को स्थापित किया जा सकता है। सुप्रभेद आगम में देवी दुर्गा को आदिशक्ति से उत्पन्न कहा गया है। देवी यहाँ श्यामा हैं और देवी की चतुर्भुजा या अष्टभुजा प्रतिमा स्थापित करनी चाहिए, ऐसा विधान है। देवी को यहाँ विष्णुप्राणानुजा कहा गया है। अर्थात् देवी भगवान विष्णु के प्राणतुल्य हैं और उनकी छोटी बहन हैं। शैव आगमों में ही नहीं, महाभारत में भी आर्या स्तव में देवी अर्जुन के द्वारा गोपेन्द्र की अनुजा के रूप में स्तुत हुई हैं। इसके अतिरिक्त मार्कण्डेय पुराण में स्पष्ट रूप से नन्द गोप के घर में देवी के जन्म का आख्यान मिलता है, जहाँ देवी विन्ध्याचलनिवासिनी नाम से कथित हैं। इस शैव आगम में भी देवी उस हेतु विष्णुभगिनी के रूप में उक्त हैं। सुप्रभेद आगम में देवी के हाथों में शंख, चक्र, खड्ग, ढाल, धनुष, बाण, त्रिशूल एवं पाश धारण किया हुआ वर्णित है। परन्तु वैष्णव और शैव आगमों में देवी दुर्गा की प्रतिमा का जो वर्णन मिलता है, वह भगवान विष्णु के चिह्न या लक्षणों से युक्त है। अत: विद्वानों का आशय है कि यह देवी वैष्णवी या विष्णुशक्ति-स्वरूपिणी हैं। परन्तु यह कथन चिन्तनीय और परीक्षणीय है। देवी विष्णुभगिनी होने के कारण उन दोनों की अभिन्नता की और अस्त्र-शस्त्र की समानता की ओर संकेत करती हैं। महाभारत काल से ही उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत में देवी के साथ नारायण का भ्रातृसम्बन्ध स्थापित है। पुन: दक्षिण भारत में विशेषत: द्रविड़ क्षेत्र में नारायण और दुर्गा के बीच यह सम्बन्ध अत्यन्त स्पष्ट रूप से कथित है और उस को केन्द्रित कर उत्सव मनाया जाता है। मदुरै में मीनाक्षी देवी के मन्दिर में उनके विवाहोत्सव में विष्णु के स्वरूप वरदराज पेरुमल को उनके भाई के रूप में दर्शाया गया है। शैव मत में शिव धर्मी और देवी धर्मस्वरूप हैं। निर्गुण-निराकार स्वरूप शिव के सगुण-साकार शक्ति स्वरूप के दो रूप हैं, एक विष्णु, दूसरी शक्ति या देवी। दोनों वस्तुत: यमल तत्त्व (twin principle) हैं, इसलिये विष्णु और देवी एक ही तत्त्व के दोनों प्रकाश हैं। अत: देवी का वैष्णव आयुध होना सम्भवत: उनके विष्णु तत्त्व के साथ अभिन्नता का द्योतक है। परन्तु सर्वत: परिशीलन किया जाये, तो यह सत्य है कि आगमशास्त्रों में उल्लेखित दुर्गा देवी के प्रतिमागत वैशिष्ट्यों – वैष्णवी या नारायणी शक्ति

का होना ही प्रतिपादित करता है। आगमशास्त्रों में इस प्रकार दुर्गा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

आगमशास्त्रों में अष्टभुजा से अधिक भुजायुक्त दुर्गा-प्रतिमा का वर्णन नहीं मिलता। अन्य शिल्पशास्त्र सम्बन्धित ग्रन्थ जैसे मयमत, अभिलषितार्थ चिन्तामणि, अपराजित पृच्छा, शिल्परत्न, चतुर्वर्गचिन्तामणि आदि इन ग्रन्थों में दशभुजा महिषमर्दिनी दुर्गा का वर्णन प्राप्त होता है। इनमें अधिकांशत: समानता ही दृष्टिगोचर होती है। आयुध के विन्यास और संख्या सर्वत्र ही दस हैं। मुख्यत: खड्ग, चक्र, धनुष, बाण, पाश, अंकुश, ढाल, परशु और त्रिशूल, ये दस आयुध ही उल्लेखित हैं। कहीं-कहीं उनके स्थान पर कपालपात्र, कमल, शंख, घण्टा इत्यादि आयुध भी वर्णित हैं। अभिलषितार्थ चिन्तामणि में देवी के दशभुजा में जो दस आयुध कहा गया है, वहाँ चन्द्रबिम्ब भी एक आयुध के रूप में उल्लेखित है। चन्द्रमा को अपने हाथ में धारण करने का कारण सम्भवत: देवी का सोमतत्त्व के प्रति सम्बन्ध है। योग और तन्त्र के अनुसार शरीर में सोम, सूर्य और अग्नि ये तीन तत्त्व हैं। अग्नि और सोम वेदों में भी युगल सिद्धान्त या तत्त्व के रूप में प्रतिपादित हैं। अग्नि तत्त्व को सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुषतत्त्व कहा जा सकता है और सोम को प्रकृति तत्त्व कहा जा सकता है।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार मातृत्व का परिचायक है – सोम ग्रह। अत: देवी के साथ सोमतत्त्व सम्बद्ध है, इसलिये यह अनुमान किया जा सकता है कि चन्द्रबिम्ब देवी के आयुध के रूप में प्रदर्शित है। चन्द्र का भी प्रतीकात्मक स्वरूप है, अत: काल के नियन्त्रक के रूप में चन्द्र की स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शिल्पशास्त्र में अत्यन्त नवीन है शैव प्रतिष्ठासम्बन्धित ग्रन्थ प्रतिष्ठालक्षण सारसमुच्चय। बंगाल तथा पूर्व भारत में अधिकांश प्राक् मध्यकालीन प्रतिमायें इस प्रतिष्ठाशास्त्र के अनुसार ही निर्मित हैं। वहाँ बीस भुजा चण्डिका का भी वर्णन मिलता है। यद्यपि पुरातात्त्विक निर्देशों में दो से अठाईस भुजा तक महिषासुरमर्दिनी दुर्गा प्रतिमायें प्राप्त होती हैं, तथापि शास्त्रों में दशाधिक हस्तयुक्त दुर्गा का वर्णन अल्प है। अधिकतया दशभुजा देवी का ही वर्णन प्राप्त होता है और अष्टभुजा का। आयुधविन्यास में समानता होते हुए भी गात्रवर्ण में भेद दिखाई देता है। कहीं देवी को उदीयमान सूर्य की तरह प्रभायुक्त कहा गया है, तो कहीं घने बादल की भाँति उनका वर्ण है। कहीं सुवर्ण के जैसे रंग, तो कहीं दूर्वा की तरह श्यामल वर्ण भूषण और वस्त्र इत्यादि में भी भेद है। जटामुकुट और करण्डमुकुट देवी के शिरोभूषण के रूप में देखे जा सकते हैं। शिल्पशास्त्रों में देवियों के वर्णन के प्रसंग में अथवा शिव परिवार के वर्णन-प्रसंगवशात् महिषमर्दिनी दुर्गा देवी का वर्णन प्राप्त होता है।

पुराणों में भी देवी दुर्गा का वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता हैं। वस्तुत: अभी जो दुर्गा देवी की शारदीय पूजा होती है, वह पुराणों के वर्णन के अनुसार ही प्रतिमा का निर्माण किया जाता है। पुराणों में मत्स्यपुराण, देवीपुराण, कालिकापुराण, देवीभागवत, मार्कण्डेयपुराण, महाभागवत, वराहपुराण और गरुड़पुराण में देवी दुर्गा का वर्णन प्राप्त होता है। दशभुजा दुर्गा का मत्स्य और कालिकापुराण में कथित वर्णन ही सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रसारित है। परवर्ती ग्रन्थकार इस वर्णन से प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। मार्कण्डेयपुराण में देवी महिषमर्दिनी को अष्टादशभुजा और सहस्रभुजा कहा गया है। वस्तुत: सहस्रभुजा यहाँ संख्यामात्र नहीं, अपितु अनन्तशक्तिमत्ता का परिचय देता है। देवी सर्वशक्तिमयी हैं, यही सहस्रभुजा होने का तात्पर्य है। कालिकापुराण में भी अष्टादशभुजा महिषमर्दिनी दुर्गा का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त षोडशभुजा और दशभुजा युक्त देवी-मूर्ति का वर्णन भी प्राप्त होता है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण, वराहपुराण और अग्निपुराण में बीस भुजा विशिष्ट देवी वर्णित हैं। गरुड़पुराण और अग्निपुराण में अष्टादश भुजा युक्त देवी प्रतिमा का लक्षण कहा गया है। देवीपुराण और गरुड़ में अठाईस बाहु की प्रतिमा का वर्णन है। यह प्रतिमा हस्तसंख्या में जैसे आश्चर्यचकित करती है, वैसे ही भारतीय शिल्पकला और शास्त्र के वैविध्य का परिचय भी देती है। महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमा के क्रमश: विकास की धारा इन शिल्पशास्त्रीय प्रतिमा लक्षण में चित्रित है। इन शिल्पशास्त्रों के अवलोकन और परिशीलन से महिषासुरमर्दिनी दुर्गा देवी का स्थान और महत्त्व कैसे क्रमश: समस्त शिल्पशास्त्रों में बढ़ता गया, भली-भाँति स्पष्ट होता है।

शेष भाग पृष्ठ ४७७ पर

श्रीरामकृष्ण-गीता (३८)

(आठवाँ अध्याय ८/२)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

श्रीरामकृष्ण उवाच

तत्रैत्यैक्य निरीक्ष्येदं पाशमेकान्ततोऽन्तिकम्।

अन्यत्र ते पलायन्ते मीना उत्प्लुत्य वागुरात।।७।।

– कोई-कोई मछली टाप के पास जाकर यह देखकर एकदम उछलकर अन्यत्र भाग जाती है।

संसारेऽपि च बाह्येन चाकचक्येन मोहिताः।

प्रविशन्ति जना मूढ़ाः स्वेच्छया कामताडिताः।।८।।

– संसार में भी बाहरी आकर्षण से मुग्ध होकर लोग कामना के वशीभूत हो स्वेच्छा से प्रवेश करते हैं।

मायामोहेन संश्लिष्टा दुखैः कष्टैश्च शेषतः।

पीड्यमाना विनश्यन्ति मीना यन्त्रगता इव।।९।।

– अन्त में माया-मोह से ग्रस्त हो दुख-कष्ट पाकर विनाश को प्राप्त होते हैं।

ततो वै येऽवलोक्येदं न सक्ताः कामकांचने।

भगवत्पादपद्मस्थास्ते मोदन्ते यथार्थतः।।१०।।

– जो लोग ये सब देखकर काम-कांचन में आसक्त न होकर भगवान के चरण-कमलों में आश्रय लेते हैं, वे लोग ही सच्चा सुख और शान्ति प्राप्त करते हैं।

विचित्रः खलु संसारोऽयं कुहकस्य भाजनम्।

साधु रामप्रसादस्तु प्रोवाचेदं पुरैकदा।।११।।

– पहले एक बार साधक रामप्रसाद ने कहा था – यह संसार धोखे की टट्टी है।

पुनरेवेष संसारस्तु भक्त्यधिगमे सति।

श्रीहरेः पादपद्मेषु भवेत् कुटी सुखस्य च।।१२।।

– किन्तु श्रीहरि के पादपद्मों में भक्ति प्राप्त करने पर यह संसार आनन्द की कुटी बन जाता है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ४५४ का शेष भाग

त्यौहार मार्च-अप्रैल और सितम्बर-अक्तूबर के महीने में मनाया जाता है, जिसे ऋतुओं का सन्धिकाल सन्धि-मास भी कहा जाता है। इस मास में प्राकृतिक परिवर्तन होता है। इसका मनुष्य के शरीर और मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ऋतु परिवर्तन और सूर्य ऊर्जा के प्रभाव से ऊर्जा का स्तर परिवर्तित होता है। इससे मनुष्य में सकारात्मक ऊर्जा बढ़ती है। इसलिए यह त्यौहार मनाया जाता है। उमंग उत्साह में रहकर सकारात्मक ऊर्जा बनी रहे, इसलिए नवरात्र में ज्वारा बोया जाता है, जो नौ दिनों में कई रंग बदलते हुए हरियाली का प्रतीक होता है। ऋतु परिवर्तन के समय रोगाणु-संक्रमण बढ़ते हैं, इसलिए पूजा के समय धूप (प्राकृतिक जड़ी-बूटी का मिश्रण) जलाया जाता है। मनुष्य स्वस्थ्य रहने के लिए उपवास तथा रास-गरबा नृत्य करते हैं।

तो बच्चो, हम इस वर्ष की दुर्गा-पूजा के आध्यात्मिक और वैज्ञानिक महत्त्व को ध्यान में रखते हुये हर्ष और उल्लास के साथ अवश्य मनायेंगे। ○○○

पृष्ठ ४६५ का शेष भाग

शंका – तत्रापि ज्ञेयत्वम् अभ्युपगम्यते ज्ञानस्य स्वेन एव इति चेत्।

– वहाँ (सुषुप्ति में) भी जो ज्ञान रहता है, उसे ज्ञेय (अपने आप में जानने योग्य) मानते हैं, ऐसा कहें तो!

समाधान – न, भेदस्य सिद्धत्वात्। सिद्धं हि अभाव-विज्ञेय-विषयस्य ज्ञानस्य अभाव-ज्ञेय-व्यतिरेकात् ज्ञेय-ज्ञानयोः अन्यत्वम्।

– नहीं, क्योंकि उन (ज्ञान तथा ज्ञेय) का भेद सिद्ध हो चुका है। अभाव-रूप ज्ञेय-विषयक के ज्ञान के अभाव की – ज्ञेय से भिन्नता सिद्ध हो जाने से, ज्ञेय तथा ज्ञान की भिन्नता प्रमाणित हो चुकी है।

न हि तत्-सिद्धं मृतम् इव-उज्जीवयितुं पुनः अन्यथा कर्तुं शक्यते वैनाशिक-शतैः अपि।

– उस सिद्ध हुए तथ्य को, मरे हुए को पुनः जीवित करने की भाँति, सैकड़ों (शून्यवादी) वैनाशिक भी अस्वीकार नहीं कर सकते। **(क्रमशः)**

तन्त्रोपनिषदों में शक्ति की अवधारणा

पं. भवनाथ झा

पुरातत्त्वविद् व शास्त्र अध्येता, पटना

विस्तार के अर्थ में तन् धातु से 'तन्त्र' शब्द की व्युत्पत्ति होती है, अत: इसे वेद का विस्तार माना गया है। अथर्ववेद तन्त्र के लिए प्रसिद्ध वेद है, जिसमें विभिन्न प्रकार के लौकिक प्रयोगों के द्वारा चमत्कार दिखाने की विधि वर्णित है। लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से ईसा की दसवीं शती तक आते-आते तन्त्र-साहित्य एक दर्शन के रूप में विकसित हो गया है। लौकिक चमत्कार-प्रदर्शन से ऊपर उठकर तन्त्र की धारा में मोक्ष पाने के लिए उपाय भी खोज लिए गये हैं। अन्य आस्तिक दर्शन की तरह ही इसमें भी ब्रह्म, माया, ईश्वर, शक्ति, संसार आदि की दार्शनिक व्याख्या की गयी है। इस प्रकार तन्त्र एक दार्शनिक धारा के रूप में व्यवस्थित हो गया है। यही कारण है कि उपनिषद्-ग्रन्थों की शैली में अनेक ऐसे उपनिषद लिखे गये, जिनका वर्ण्य-विषय वेद न होकर तन्त्र है। शंकराचार्य के द्वारा उद्धृत मुक्तिकोपनिषद रामोपासना विषयक तन्त्र-साहित्य है, जिसमें अनेक उपनिषदों की सूची दी गयी और उन्हें विभिन्न वेद से सम्बद्ध कहा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि ये सभी तन्त्रोपनिषद आचार्य शंकर तक अपने स्वरूप में आ चुके थे और आचार्य शंकर के द्वारा व्याख्यायित ११ वैदिक उपनिषदों के अतिरिक्त तन्त्रोपनिषदों के साथ कुल संख्या १०८ तक पहुँच गयी है।

इन तन्त्रोपनिषदों को यदि हम देवता के आधार पर विभाजित करें, तो कुल पाँच शाखाओं में इन्हें हम विभक्त कर सकते हैं – सौर, शैव, गाणपत्य, वैष्णव एवं शाक्त। अर्थात् सूर्य, शिव, गणपति, विष्णु एवं शक्ति ये मुख्य पाँच देवता इनके आराध्य हैं। इस प्रकार तन्त्र की भी ये पाँच शाखायें सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचलित रहीं। इन्हें पंच देवता कहा गया। मिथिला की विशेषता की बात करें, तो यहाँ अग्नि की पूजा विशिष्ट रूप से चलती रही, अत: पंच देवता की सूची में विष्णु के स्थान पर अग्नि की अवधारणा रही और विष्णु की पूजा पृथक् मानी गयी। अत: मिथिला की परम्परा में पंचदेवता और विष्णु की पूजा को आरम्भ में अनिवार्य माना गया, लेकिन शक्ति-पूजन की परम्परा इसमें भी प्रतिष्ठित रही। १०८ उपनिषदों में से कुछ महत्त्वपूर्ण शाक्त उपनिषद हैं – सीतोपनिषद्, अन्नपूर्णोपनिषद्, त्रिपुरातापिन्युपनिषद्, देव्युपनिषद, त्रिपुरोपनिषद्, भावनोपनिषद् सौभाग्योपनिषद्, सरस्वती-रहस्योपनिषद्, वहबृचोपनिषद्, कौलोपनिषद् आदि।

यदि हम भारतवर्ष के मानचित्र पर देखें, तो कश्मीर में शैव परम्परा, दक्षिण भारत में वैष्णव और मिथिला सहित पूर्वोत्तर भारत में शक्ति की परम्परा पर्याप्त मुखर रही है। मिथिला, बंगाल, असम, नेपाल, उड़ीसा इन क्षेत्रों को हम शाक्तागम का क्षेत्र मान सकते हैं। कालिका-पुराण कामरूप क्षेत्र की रचना है, जिसमें शक्ति-पूजन का सांगोपांग विवेचन हमें प्राप्त है। यहाँ मिथिला की तान्त्रिक परम्परा के आधार पर हम उन सिद्धान्तों की खोज का प्रयत्न करेंगे, जिसके आधार पर मिथिला का शाक्तागम स्पष्ट हो सके, साथ ही यह भी दृढ़ हो सके कि सम्पूर्ण भारत में शक्ति सम्बन्धी अवधारणा में एकात्मता किस प्रकार प्रवाहित है।

तन्त्रोपनिषद् ग्रन्थों में जब हम शाक्तागम-सिद्धान्त के अन्वेषण का प्रयास करते हैं, तो कौलोपनिषद एक ठोस आधार के रूप में प्रकट होता है। मिथिला की तान्त्रिक परम्परा और अनुश्रुतियाँ इनके सिद्धान्तों के अनुकूल हैं। हम सब जानते हैं कि मिथिला में कुल-परम्परा विकसित हुई है। यहाँ कुल शब्द का अर्थ परिवार नहीं होकर विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त है और यह तन्त्र की एक विशिष्ट धारा का द्योतक है। इसी विशिष्ट शाक्तागम की परम्परा का ग्रन्थ है कौलोपनिषद्। अत: हम मिथिला के शाक्तागम का आधार ग्रन्थ कौलोपनिषद् को मान सकते हैं।

इस उपनिषद् में शक्ति को ही ब्रह्म माना गया है तथा उन्हीं की प्राप्ति को मोक्ष कहा गया है, जिसके बाद पुन: इस संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता है। इस कौलोपनिषद में कुल की परिभाषा को स्पष्ट किया गया है कि इस परम्परा के प्रवर्तक शिव हैं और त्रिपुरसुन्दरी के शाम्भवी रूप में देवी कुल-परम्परा की अधिष्ठात्री हैं। साथ ही शिव एवं शक्ति में कोई भेद नहीं है। अत: कुलदेशिकों अर्थात् उपासकों के लिए कहा गया है कि वे भीतर से शक्ति के उपासक रहें, बाहर से अर्थात् चन्दन आदि के द्वारा स्वयं को शैव के रूप में प्रकट करें और सभा में तथ्यों के प्रतिपादन करते समय वैष्णव बने रहें – **अन्त: शाक्त: बहि: शैवा: सभामध्ये तु वैष्णवा:।**

कौलोपनिषद् के दक्षिण भारतीय भाष्यकार भास्कर राय ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि भीतर से शाक्त बनें। बाहर से शैव बने। समाज में वैष्णव बनें। यद्यपि स्वयं को प्रकट न होने दें, यह पहले कह दिया गया है, फिर भी क्या करना चाहिए, यह कहते हैं। शक्ति की उपासना करते हैं, यह केवल मन में रखना चाहिए। यद्यपि शाक्त के लिए कहा गया है कि कुचन्दन (मिट्टी का चन्दन अथवा रक्त का चन्दन) से भौंह के बीच में बिन्दु शाक्तों के लिए चन्दन है, तथापि विभूति धारण करना आदि जो शैव के लिए चिह्न कहे जाते हैं, उसे ही धारणा करें, क्योंकि शिव एवं शक्ति में कोई भेद नहीं है। कहा भी गया है कि गोपियों के नयन का अमृत के रूप में विष्णु मुझे ही प्राप्त करते हैं। इन वचनों से परम शिव की शक्ति से अभिन्न त्रिपुरासुन्दरी के रूप में प्रकट होकर आकृति धारण करने की बात से सभाओं में विष्णु का नाम लेकर विष्णु के उपासक के रूप में ही स्वयं को प्रकट करें। यही तीनों सूत्रों का अर्थ है। इसीलिए विष्णु, शिव एवं शक्ति इन तीनों में उत्तरोत्तर अधिक फलदायी तथा अधिक रहस्यात्मक होने की बात 'रहस्यनामसाहस' में कहा गया है –

''**अन्त: शाक्त:। बहिश्शैव:। लोके वैष्णव:। अप्राकट्येऽपि कर्त्तव्यतामेव विवृणोति। शक्तेरुपास्तिरन्त: करणैकवेद्या कार्य्या।। कुचन्दनेन शाक्तानां भ्रूमध्ये बिन्दुरिष्यते। इति चिह्नानि विदितान्यपि विभूतिधारणादि-शैवचिह्नराच्छादितान्येव कार्याणि। शिवस्यापि शक्त्यभेदात्। मामेव पौरुषं रूपं गोपिकानयनामृतम्।। इत्यादिवचनैर्विष्णुस्वरूपस्य परशिवाविरोधत्रिपुरसुन्दरी प्रकट रूपान्तरात्मकतया सभासु विष्णुनामाभ्रेडनादिना विष्णूपास्तिमेव प्रकटयेद् इति सूत्रत्रयार्थ:। अत एव विष्णुशिवशक्तीनामुत्तरोत्तरफलाधिक्य मुत्तरोत्तररहस्याभिप्रायेणोक्तं रहस्यनामसाहसे।**''

इस प्रकार, कौलोपनिषद स्पष्ट रूप से विष्णु, शिव एवं शक्ति की उपासना को सबसे अधिक फलदायी मानती है। यहीं मिथिला की शाक्त-परम्परा का सिद्धान्त है।

इसी प्रकार मिथिला की शाक्त परम्परा का विवेचन सीतोपनिषद में भी हुआ है। यहाँ यद्यपि सीतोपनिषद् वैष्णवों की परम्परा की वैखानस शाखा से सम्बन्धित है, किन्तु यहाँ भी अन्य शाक्तागमों की तरह देवी सीता को शब्दब्रह्ममयी और बुद्धिस्वरूपा कहा गया है। शाक्त उपनिषदों में सामान्य रूप से हम दार्शनिक स्तर पर शक्ति को इसी शब्द-ब्रह्ममय स्वरूप में पाते हैं।

शाक्त तन्त्र के ग्रन्थों में मातृका के रूप में शक्ति की अवधारणा भी रही है। सरस्वती तन्त्र में कहा गया है कि सोलह मातृकाएँ अर्थात् १६ स्वर वर्ण ही वह शक्ति है, जिससे व्यञ्जन वर्ण अपना स्वरूप ग्रहण करते हैं। अत: व्याकरण शास्त्र में जहाँ लृकार का दीर्घ रूप प्रयुक्त नहीं है, वहाँ तन्त्र में इसका भी प्रयोग होता है। यहाँ कहा गया है कि व्यञ्जन वर्ण स्वर के साथ संयोग करने पर ही शब्द-ब्रह्ममय संसार की सृष्टि करने में सक्षम है। आगे अ से ह तक के सभी वर्णों को भी मातृका कहा गया है, जिनसे एक शाश्वत सृष्टि की उत्पत्ति होती हैं, नाशवान संसार के लोप हो जाने पर भी वह शाश्वत सृष्टि रहती है। इसे ही पतञ्जलि, भर्तृहरि आदि ने शब्दब्रह्म कहा है। इस प्रकार शक्ति की अवधारणा शाश्वत संसार की सृष्टि में बीज के रूप में माना गया है।

शक्ति का एक स्वरूप वाक् के रूप में भी तन्त्रों में है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी के रूप में वाक् का प्रतिपादन किया गया है। इनमें वैखरी वह वाक् है, जिसे हम सुनते हैं, व्यवहार में लाते हैं, वह नाश होनेवाली है, किन्तु परा, पश्यन्ती एवं मध्यमा शाश्वत वाक् है।

उपासना स्तर के शाक्त तन्त्रों में हम इसी सिद्धान्त का पल्लवन पाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की शक्तियों के रूप में उपास्य देवी की सत्ता का बखान किया गया है तथा उनकी कृपा से सभी सांसारिक एवं पारलौकिक मनोकामनाओं

की पूर्ति मानी गयी है। उपासना के स्तर पर शक्ति की महत्ता का प्रतिपादन आचार्य शंकर ने भी स्पष्ट रूप से किया है –

यस्यास्ति भोगो न च तत्र मोक्षः
यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।।

इसी सिद्धान्त की झलक हम देवी-माहात्म्य दुर्गासप्तशती में भी पाते हैं। यहाँ दो प्रकार के उपासक हैं। राजा सुरथ अपना राज्य वापस चाहते हैं। उनकी उपासना का लक्ष्य है भोग, किन्तु वैश्य समाधि-ज्ञान के आकांक्षी हैं। सुमेधा ऋषि के उपदेश से दोनों एक साथ एक ही विधि से उपासना करते हैं। समाधि वैश्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है, किन्तु राजा सुरथ अपनी भोग की कामना के कारण पुनः जन्म लेकर मन्वन्तर के अधिपति बनते हैं। यही दुर्गा सप्तशती का मूल विनियोग है।

इस सैद्धान्तिक कौलोपनिषद के अतिरिक्त मिथिला में व्यावहारिक रूप से दशमहाविद्या के रूप में शक्ति की उपासना की परम्परा रही है। काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती बगलामुखी, मातंगी और कमलात्मिका इन दश रूपों में शक्ति की उपासना की परम्परा है। आज भी जो लोग तन्त्र में दीक्षा लेते हैं, वे इन्हीं में से किसी एक देवी का मन्त्र विधिवत् अपने गुरु से लेते हैं।

मिथिला में गुरु के रूप में माता को प्राथमिकता देना इसकी विशेषता है। यहाँ तान्त्रिक परम्परा में माता से मन्त्र लेना सर्वोत्तम माना गया है। यह भी कहा गया है कि माता से लिए हुए मन्त्र को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। दूसरे से जो मन्त्र लिये जाते हैं, उन्हें १० हजार जप कर लेने पर ही उसकी सिद्धि होती है। इसलिए माता को गुरु मानना मिथिला में सर्वोत्तम कहा गया है। यह भी मान्यता है कि माता की उपासना उस जगन्माता को पाने की पहली और अन्तिम सीढ़ी है। मुझे नहीं पता है कि माता के प्रति इस प्रकार की सैद्धान्तिक भावना भारत के अन्य क्षेत्र में है या नहीं। यदि माता न रहे, तो अपने कुल की किसी नारी से ही मन्त्र लेना चाहिए। पिता, पितामह आदि से तान्त्रिक दीक्षा का निषेध किया गया है।

कुमारी-पूजन मिथिला की परम्परा में महत्त्वपूर्ण है। यहाँ दो वर्ष से लेकर ९ वर्ष तक की कुमारी का पूजन करने का विधान है। प्रत्येक वर्ष की कुमारी का अलग-अलग नाम दिया गया है तथा उन्हें प्रत्यक्ष देवी के रूप में भोजन, वस्त्र आदि अर्पित कर उनकी प्रसन्नता से सभी मनोकामनाओं की पूर्ति मानी गयी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिथिला की तन्त्र-परम्परा में नारी को प्रत्यक्ष देवी के रूप में माना गया है। देवी को शम्भु की शक्ति शाम्भवी के रूप में माना गया है तथा उनकी उपासना से अन्य मार्गों की अपेक्षा शीघ्र मोक्ष पाने की बात कही गयी है।

शक्ति अपने नश्वर रूप में बालक को जन्म देती है, जिससे संसार चलता है। नारी के सांसारिक रूप को जहाँ वैष्णव पांचरात्र आगमों में कष्टमय तथा कष्टमय संसार को जन्म देने के कारण अत्यन्त निन्दित कहा गया है। मनुष्य के जन्म की प्रक्रिया अत्यन्त भयंकर रूप में दिखायी गयी है। संसार में मनुष्य के जन्म को पाप कहा गया है, वहीं शाक्तागमों की परम्परा में ऐसा कोई कष्टमय स्वरूप नहीं है। नारी के लौकिक एवं अलौकिक दोनों रूपों को, नश्वर एवं शाश्वत सृष्टि; दोनों को पुण्यमय ही कहा गया है। ○○○

कविता

जोड़ हृदय का तार

सदाराम सिन्हा 'स्नेही'

जगन्नाथ के श्रीचरणों में जोड़ हृदय का तार ।
तेरे हृदय से निकलेगा जगा नाम की झनकार ।।
जब तेरा मन जगन्नाथ से एकचित जुड़ जायेगा,
सारे जहाँ के पाप-ताप संताप कट जायेगा ।
श्रीहरिनाम प्रभाव से छल-छद्म जायेगा हार ।।१।।
जब तेरा मन रम जायेगा श्रीहरि जगन्नाथ से,
तुम्हें सुखानन्दमय जग मिलेगा श्री भवनाथ से ।
तू बैराग्य पथ चलेगा दूर जायेगा अहंकार ।।२।।
जैसे बलि हनुमान ने राम–नाम से दिल जोड़ दिया,
जैसे नारद ने नारायण-नाम से मन मोड़ दिया ।
सदाराम चहुँ दिशी दिखे ब्यास को हरिमय संसार ।।३।।

गीतातत्त्व-चिन्तन

बारहवाँ अध्याय (१२/१४)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १२वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

यह समझ में आता है कि हमारे मन में चिन्तन का आधार यदि निर्गुण निराकार तत्त्व रहे, तो भक्ति ठीक-ठीक चलती है। यदि नेपथ्य में निर्गुण-निराकार तत्त्व न रहे, तो भक्ति पंगु हो जाती है। वह केवल भावुकता होती है। मनुष्य केवल भावना के प्रवाह में बहता रहता है और भक्ति का यथार्थ लाभ अपने जीवन में नहीं उठा पाता। रामचरितमानस के इसी प्रसंग से भगवत्तत्त्व को थोड़ा और समझने का प्रयास करें।

मनु की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप धारण करके उनके सामने आए और उनसे वर माँगने को कहा, पर वे न तो उठकर खड़े ही हुए और न उन्होंने कोई वर ही माँगा। परन्तु जब भगवान ने आकाशवाणी के माध्यम से कहा, 'मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम वर माँगो।' तब वर माँगते हुए मनु कहते हैं, 'प्रभो! मैं तो आपको देखना चाहता हूँ।' भगवान के पास कोई रूप तो नहीं है, इसलिए मनु से ही पूछ लिया, 'तुम्हीं बता दो मैं किस रूप में तुम्हारे पास आऊँ?' तब मनु ने कहा, 'प्रभु! मेरा पुत्र बनकर मेरे सामने आइए।' इस बात का तात्पर्य यहाँ यह है कि भक्त भगवान को बता रहा है कि वे किस रूप में उसके सामने आएँ। भक्त की इच्छा की पूर्ति के लिए ही भगवान रूप धारण करते हैं। उनके पास अपना तो कोई रूप है ही नहीं।

रामचरितमानस पढ़नेवालों के मन में यहाँ थोड़ा संशय आता है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश के कहने पर तो मनु ने वर माँगा नहीं, तब फिर वे कौन-से भगवान थे, जिन्होंने आकाशवाणी के द्वारा उससे वर माँगने को कहा? हमें ध्यान में रखना होगा कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश तो भगवान के सगुण-साकार स्वरूप थे और आकाशवाणी के माध्यम से जिनको जाना गया, वे उन्हीं भगवान के निर्गुण-निराकार तत्त्व थे। शास्त्रों में कहा गया है कि जिस समय ब्रह्म नाम और रूप धारण करके आता है, तब सबसे पहले उसमें से शब्द का स्फुरण होता है। उसको शब्दब्रह्म कहते हैं, स्फोटब्रह्म कहते हैं। उसे चाहे तो हम नाम-रूप विहीन तत्त्व कह लें या नाम-रूप से परे तत्त्व है, अनन्त तत्त्व है, व्यापक तत्त्व है कह लें पर जो व्यापक तत्त्व होगा, उसका तो कोई रूप ही नहीं होगा। जो सर्वव्यापी है, उसका क्या रूप हो सकता है? इसलिए इस सर्वव्यापी तत्त्व में जब शब्द की स्फुरणा होती है और वह शब्दब्रह्म के रूप में स्वयं को प्रकट करता है, तभी हम उसको जान पाते हैं।

निर्गुण-निराकार में पहले नाम आया, फिर उसमें रूप की स्फुरणा हुई। इस तरह यह जो क्रम है, इसी की रक्षा रामायण में की गई। भगवान का रूप सर्वव्यापक है। वे सभी जगह विद्यमान हैं। जिस रूप में भक्त उन्हें देखने की इच्छा करता है, उसी रूप में वे उसके समक्ष उपस्थित हो जाते हैं। यहाँ मनु ने बहुत ही कुशलता से भगवान को वह रूप धारण करने के लिए कहा, जिसका वर्णन ज्ञानी भी किया करते हैं और भक्त भी। मनु ने भगवान से कहा, 'आपका

यह जो सर्वत्र व्यापक रूप है, इसका चिन्तन तो किया जा सकता है, पर आँखों से यह दिखाई नहीं देता। मन में आपके उस रूप का ध्यान तो किया जा सकता है, पर प्रभो! आपके रूप के दर्शन के लिए आँखें तो प्यासी हैं। इसलिए रूप-धारण करके आप मेरे समक्ष प्रगट हो जाइए।' इसी से भगवान उसके सामने प्रगट हुए। नरसिंह, परशुराम, वामन सभी रूप उन्होंने भक्त की प्रेरणा से धारण किए। उनको रूप धारण कराने में भक्त की ही विशेषता है।

भक्त भगवान को अपने समकक्ष देखना चाहता है

बारहवें और तेरहवें अध्याय की तुलनात्मक चर्चा जो यहाँ हुई है, उसका एक विशेष उद्देश्य है। हमें ऐसा मानकर नहीं चलना चाहिए कि यहाँ पर भगवान श्रीकृष्ण ने सगुण-साकार रूप को जो बढ़ावा दे दिया है, उसका तात्पर्य यह नहीं है कि निर्गुण-निराकार तत्त्व को उन्होंने काट ही दिया। वास्तव में तात्पर्य तो यह है कि दोनों रूपों को साथ ही साथ लेकर चलना है। उनमें से किसी भी एक का खण्डन बिल्कुल नहीं करना है। निर्गुण-निराकार तत्त्व वह आधार है, जिसके ऊपर सगुण-साकार खड़ा रहता है।

सीढ़ी के लिए एक शब्द अवतरणिका भी है। कहीं पर सीढ़ी लगी हो, तो उससे होकर ऊपर भी जाया जा सकता है और नीचे भी उतरा जा सकता है। जो निर्गुण-निराकारवादी हैं, वे कहते हैं, 'देखो भाई! तुम साधना करो, योग को अपने जीवन में उतारो और धीरे-धीरे अपने को शुद्ध करते हुए परमात्मा तक चले चलो। इसका अर्थ यह हुआ कि उस परमात्मा तक पहुँचने के लिए यह सीढ़ी एक उपाय है। भक्त का कहना है कि यह तो ठीक है कि ज्ञानी ज्ञान के सहारे और योगी योग के सहारे परमात्मा के पास पहुँचे, जो कि बहुत ऊँचाई पर स्थित है और जिनके पास पहुँचने के लिए योग्यता की आवश्यकता है। जब तक योग्यता प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक व्यक्ति उनके पास पहुँच नहीं सकता। योग्यता का अर्जन करते हुए उसे सीढ़ी पर चढ़ना है। पर यह जो सीढ़ी है, वह बहुत ऊँची है और उस पर से होकर परमात्मा तक पहुँचने में उसे विलम्ब भी बहुत लग सकता है। फिर सीढ़ी की चौड़ाई भी तो एक सीमा तक ही रहेगी। सभी एक साथ उस पर चढ़ नहीं पाएँगे। क्रमशः ही चढ़ सकेंगे। इसमें समय भी न जाने कितना लग जाए।

भक्त कहता है, 'प्रभो! यह जो साधना की सीढ़ी आप तक पहुँचने के लिए लगी है और जिस पर से होकर ज्ञानी ज्ञान-साधना द्वारा और योगी योग-साधना के द्वारा आपके पास पहुँच रहे हैं, उसी सीढ़ी से आप ही क्यों न नीचे उतर आते? आपके उतर आने से हम सबको एक साथ आपके दर्शन हो जाएँगे।' यह भक्त की कल्पना है।

भक्त भगवान को सबके लिए सुलभ बना देना चाहता है। वह चाहता है कि भगवान नीचे उतरें, अवतार लें। भगवान को वह अपने समकक्ष बनाना चाहता है। जैसे जो कुछ भक्त अपने जीवन में देखता है, वैसा ही सब कुछ वह भगवान के जीवन में भी देखना चाहता है।

भक्त माया का उन्मूलन नहीं चाहता

भगवान अब बालक का रूप लेकर आ तो गए, पर रोने की उन्हें याद नहीं रही, तब कौशल्या को ही उन्हें याद दिलाना पड़ा कि उनके घर में वे भगवान नहीं हैं। उन्हें वहाँ बड़प्पन दिखाने की, विभूति प्रदर्शित करने की आवश्यकता नहीं है। बालक बनकर आए हैं, तो बालक की ही तरह रुदन भी करें।

भगवान तो भक्त के वश में हैं ही। वे वही करते हैं, जो भक्त उनसे करवाना चाहता है। भक्तों की प्रार्थना स्वीकार करके निर्गुण-निराकार तत्त्व सगुण-साकार बनता है। भगवान तो मनुष्य बन गए और उनके चरित गानेवाले को भव-कूप से छूटने का और हरिपद मिलने का आश्वासन प्राप्त हो गया। इसमें ज्ञान और भक्ति दोनों की पराकाष्ठा हो गई। कब? जबकि मनुष्य ने समझ लिया कि भक्त की प्रार्थना से प्रसन्न होकर कैसे निर्गुण-निराकार तत्त्व भी सगुण-साकार रूप ले लेता है! भगवान को देखते समय जब हम अपूर्ण होते हैं, हममें जीवत्व का भाव रहता है, तब तो ऐसा लगता है कि वस्त्राभूषण पहनकर ही भगवान का सौन्दर्य बढ़ेगा; परन्तु जो यथार्थ भक्त है, जिसकी भक्ति का आधार ज्ञान है, उसके पास भगवान की माया का कोई प्रयोजन नहीं है। वे अपने सभी आभूषण उतार भी दें, तो भी उनके सौन्दर्य में अभिवृद्धि ही होती दीखती है। कागभुशुण्डिजी ने राम के बाल-रूप के दर्शन पीतवस्त्र में करना चाहा, तो उन्हें वैसे ही दर्शन हुए। पीताम्बर भगवान की माया है। भगवान की झगुलिया का वस्त्र कुछ गाढ़ा होने के कारण उसमें से भगवान के शरीर की झलक नहीं मिली, तो भक्त ने भगवान से झीना वस्त्र पहनने का अनुरोध किया। भगवान ने वस्त्र ही त्याग देने की

बात कही, तो उसका विरोध करते हुए भक्त ने कहा, वस्त्र उतारने का काम तो वेदान्त का है। झीने कपड़े में से भगवान के शरीर की झलक पाने की भक्त की मनोकामना का तात्पर्य यह है कि माया इतनी प्रबल न हो जाए कि भगवान का रूप अदृश्य ही हो जाए। भक्त यह भी चाहता है कि ज्ञान इतना बढ़ न जाए कि प्रभु की सारी माया ही निकल जाए और उसके साथ-साथ प्रभु का रूप (सगुण-साकार) ही न दिखे। माया नहीं रहेगी, तो भक्ति टिकेगी ही नहीं। वहाँ पर केवल ज्ञान ही ज्ञान रहेगा। इसलिए भक्त चाहता है कि माया का झीना पर्दा लगा रहे।

ज्ञान और भक्ति का जीवन में समन्वय आवश्यक

गीता के तेरहवें अध्याय में विवेचना के विषय हैं – क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ। यह शरीर खेत (क्षेत्र) है और इस शरीर रूपी खेत को कोई जोतनेवाला भी है, जो इसको जोतकर इसमें से फसल तैयार करता है। जमीन पर जैसे फसल पककर तैयार होती है, उसी प्रकार शरीर में कर्मों की फसल लगती है और इस फसल को तैयार करनेवाला क्षेत्रज्ञ कहलाता है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के ऊपर जो परमात्मा, जो पुरुषोत्तम स्थित है, उसको जो जान लेता है, वही भक्ति का अधिकारी होता है। तेरहवें अध्याय में यह प्रसंग भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के समक्ष रखते हैं। इसलिए इस तेरहवें अध्याय का ऐसा महत्त्व है। बारहवाँ अध्याय भक्तिमूलक है। उसमें ऐसा आभास मिलता है कि भगवान अर्जुन को सगुण-साकार रूप की उपासना करने की शिक्षा देते हैं। सगुण-साकार उपासना पर उनका बल है। निर्गुण-निराकार उपासना के विषय में यहाँ वे उदासीन हैं, ऐसा अनुभव होता है।

परन्तु तेरहवाँ अध्याय विवेचन का अध्याय है, ज्ञान का अध्याय है। यदि भक्ति को ज्ञान का आधार न रहे, तो भक्ति कोरी भावुकता रह जाती है और कोरी भावुकता से भगवान नहीं मिला करते। भक्ति में ज्ञान का आधार आ जाए, इसी के लिए भगवान यह तेरहवें अध्याय की व्याख्या प्रारम्भ करते हैं। क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-विभाग-योग शुरू करते हैं और इसके सहारे अर्जुन को ज्ञान प्रदान करते हैं। यही इस तेरहवें अध्याय का प्रतिपाद्य विषय है। हमें भक्ति और ज्ञान दोनों की एक साथ आवश्यकता है। इस प्रसंग में पं. रामकिंकर उपाध्याय जी ने एक बात बताई थी कि जिस समय नाटक देखते हैं, उस समय तो उसको भक्त की दृष्टि से देखना चाहिए और जिस समय नाटक समाप्त हो जाए, उस समय हमको ज्ञानी बन जाना चाहिए। उदाहरणार्थ – मान लीजिए सत्यवादी हरिश्चन्द्र का नाटक खेला जा रहा है। हरिश्चन्द्र बने हुए उस पात्र को आप जानते हैं कि वह बड़ा झूठा है और आप ही के गाँव का रहनेवाला है। अब इस नाटक को यदि आप ज्ञानी बनकर देखेंगे, तो हर समय आपको यही लगा रहेगा कि यह तो गाँव का महा-झूठा आदमी है, जो यहाँ सत्यवादी का अभिनय कर रहा है। तब आपको नाटक देखने में जरा भी आनन्द नहीं आएगा। अत: नाटक देखना है, तो भक्त बनकर देखिए। पर ऐसे भी भक्त मत बनिए कि किसी नाटक में अभिनय करनेवाला कोई पात्र आपका मित्र हो और नाटक के अन्तर्गत ही कोई उसकी पिटाई करने लगे, तो आप अपने मित्र की रक्षा करने के लिए कूदकर मञ्चपर ही जा पहुँचे, तो लोग आप पर ही हँसेंगे। तो भक्ति के साथ-साथ इस ज्ञान का बना रहना भी आवश्यक है कि उस समय अमुक व्यक्ति आपका मित्र नहीं, नाटक का एक पात्र है और उसकी नकली पिटाई की जा रही है।

नाटक देखते समय आप भक्त बने रहें, यह तो आपने सही किया, पर नाटक की समाप्ति पर भी आप यदि भक्त ही बने रह गये, तो अपने गाँव के उस झूठे-मक्कार को सचमुच का सत्यवादी हरिश्चन्द्र ही मान बैठेंगे और उसके द्वारा नाटक में दिये गये दान से प्रभावित होकर अपने लिए भी कुछ माँग बैठेंगे और लज्जित होंगे।

जीवन भी इसी प्रकार का एक नाटक है, जिसे हमको जीना है। यहाँ जीवन में भी भक्ति और ज्ञान दोनों प्रकार के दृष्टिकोण बनाए रखना उसी प्रकार आवश्यक है, जैसे नाटक देखते समय आवश्यक है। **(क्रमशः)**

जाने या अनजाने, भूल से या भ्रम से, किसी भी तरह क्यों न हो, भगवान का नाम लेने से उसका फल अवश्य मिलेगा। कोई नदी में जाकर स्नान करे, तो उसका जैसा स्नान होता है, वैसे ही अगर किसी को पानी में ढकेल दिया जाए, तो उसका भी स्नान हो जाता है और कोई सोया हुआ हो और उस पर पानी डाल दिया जाए, तो उसका भी स्नान हो ही जाता है।

– श्रीरामकृष्ण देव

साधुओं के पावन प्रसंग (६९)

स्वामी निखिलानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

४ अप्रैल, १९६७ ई. ' 'Healing and Creative Power of Silence' शीर्षक व्याख्यान में उन्होंने महात्मा गाँधी के बारे में बताया था :

''महात्मा गाँधी कभी-कभी अनशन तथा मौनव्रत करते थे। कभी १० दिन, कभी १५ दिन वे यह व्रत लेकर एकान्तवास में रहते थे। एकबार उन्होंने २१ दिन अनशन किया था। उस समय किसी को भी उनके साथ मिलने नहीं दिया जाता था, क्योंकि उनका शरीर बहुत दुर्बल था।

''जो भी हो, गाँधीजी की स्त्री तथा उनके पुत्र ने मुझे अपने साथ ले जाकर मिलने की अनुमति दी। मैंने देखा वे बिस्तर पर अर्धशायित होकर पड़े हुए हैं। मैंने कहा ''मैं केवल एक मिनट के लिए श्रद्धा ज्ञापित करने आया हूँ।' उन्होंने मुझे बैठने का संकेत किया।

''तदुपरान्त उन्होंने मुझसे विभिन्न विषयों पर प्रश्न किया। मैंने कहा, ''महात्माजी, आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। आपका शरीर समस्त देश की सम्पत्ति है। यह दीर्घ अनशन आपके शरीर को कठिन परिस्थिति में डाल दे रहा है।'' मेरी ओर देखकर उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा, ''स्वामीजी, मैं जब परेशान हो जाता हूँ और समस्या का कोई कूल-किनारा नहीं खोज पाता हूँ, तब मैं यह अनशन और मौनव्रत का आश्रय ग्रहण करता हूँ। तदुपरान्त नीरव प्रार्थना से मैं समस्या का समाधान प्राप्त करता हूँ।' ''

१९६६ ई. में थाउजेंड आइलैंड पार्क में केनोपनिषद् की कक्षा में स्वामी निखिलानन्द जी ने कहा, ''भारत के स्वाधीन होने के बाद सर्वपल्ली राधाकृष्णन रूस के प्रथम भारतीय राजदूत हुए। उन्होंने स्वयं मुझसे कहा था, ''मैंने एक दिन रूस के प्रधानमन्त्री स्टालीन से कहा, 'आप क्यों धर्म के ऊपर विश्वास नहीं करते? चर्च को भी अस्वीकार करते हैं।' स्टालीन ने उत्तर में कहा, 'मैं यदि सेंट पॉल से मिल सकूँ, तो मैं कल ही चर्च जाऊँगा।' स्टालीन धर्म के नाम पर धोखाबाजी पसन्द नहीं करते थे।''

मैंने १ जून, १९७१ ई. को हालीवूड केन्द्र में सम्मिलित होने के लिए यात्रा आरम्भ किया। पेरिस तथा लन्दन होते हुए मैं ८ जून को न्यूयार्क पहुँचा। १० जून को स्वामी निखिलानन्द जी ने मुझे रामकृष्ण विवेकानन्द केन्द्र में दोपहर में प्रसाद के लिए आमंत्रित किया। मेरा सौभाग्य था कि मैंने महाराज के साथ लगभग एक घण्टा तक वार्तालाप किया।

मैंने महाराज से कहा, ''महाराज, रामकृष्ण संघ में आपका योगदान बहुत अमित है। आपने बहुत मूल्यवान कार्य किया है। बेलूड़ मठ के सभी साधु आपके बारे में बातें

करते हैं। इसके अतिरिक्त श्रीरामकृष्ण-वचनामृत का अनुवाद करना अत्यन्त कठिन कार्य था।''

महाराज की आँखों में आँसू आ गये। उन्होंने कहा, ''श्रीरामकृष्ण-वचनामृत का अनुवाद ठाकुर की कृपा से हुआ है। उन्होंने ही सम्भव करवाया है।'' तदनन्तर उन्होंने अपनी एक इच्छा के बारे में बताया, ''देखो, मेरी एक इच्छा है। मैं बेलूड़ मठ में ठाकुर मन्दिर के सामने धूल में लोटपोट होकर ठाकुर को प्रणाम करूँ। परन्तु लगता है मेरी यह इच्छा पूर्ण नहीं होगी। क्योंकि मैं बहुत वृद्ध हो गया हूँ। इसके अतिरिक्त डोरोथी (सेक्रेटरी) तथा अन्य लोग मुझे नहीं जाने देंगे।''

महाराज ने उस दिन मुझको मूल्यवान उपदेश देते हुए कहा था, ''देखो, तुम इस देश में अभी-अभी ही आये हो। शरीर को स्वस्थ रखना। यदि तुम्हारा शरीर खराब हो गया, तो तुम ठाकुर का कार्य नहीं कर पाओगे। और अपने पास एक दैनन्दिनी रखना।'' **(क्रमशः)**

पृष्ठ ४६४ का शेष भाग

व्यावहारिक जीवन में जब कोई व्यक्ति इन विकट परिस्थितियों का सामना करता है, तब उसे एक उद्देश्य, एक मार्गदर्शक और प्रेरणा की आवश्यकता होती है। उस व्यक्ति के लिए एक उपयुक्त जीवन शैली को अपनाना आवश्यक हो जाता है। इसलिए, युवाओ, महान व्यक्तियों की संगत करना आवश्यक है। उनके सन्देशों को आदर्श के रूप में अंगीकार करना होगा। उनका शुद्ध और पवित्र जीवन हतोत्साहित युवकों को जीवन में उच्च आदर्श का पालन करने में सहायता करता है। उपर्युक्त वर्णित मैडम काल्वे के संस्मरण से आप समझ गये होंगे कि किस प्रकार स्वामी विवेकानन्द के सम्पर्क में आने के बाद उनके जीवन की गहन जटिलता, हतोत्साहित, दिग्भ्रमित और आत्मघाती नकारात्मक एवं अनियंत्रित भावनाएँ एकीकृत और रूपान्तरित होकर एक व्यापक सोच बन गई और उन्हें जीवन्त कर दिया, मानो उन्हें एक नवीन जीवन मिल गया। अत: महान् व्यक्तित्व की संगति किसी व्यक्ति की विकृत मानसिकता पर गहन प्रभाव डालती है, जिससे उसका सम्पूर्ण जीवन ही रूपान्तरित हो जाता है। ○○○

पृष्ठ ४६८ का शेष भाग

भारतीय शिल्पशास्त्र में देव-प्रतिमा के वर्णन में हमें मनुष्य-प्रतिभा का अत्यन्त चरम उत्कर्ष देखने को मिलता है। भारतीय शिल्पशास्त्र में देवी दुर्गा का मूर्तिलक्षण अत्यन्त स्पष्ट रूप से लक्षित है। देवी दुर्गा के हाथों में आयुधों का वैविध्य और वैचित्र्य हमें भारतीय शिल्पशास्त्र में छिपी गम्भीर दार्शनिक विचार को प्रदर्शित करता है। विभिन्न आयुध देवी के स्वरूप के विभिन्न दिशा को प्रकाशित करते हैं और उसके साथ ही भारतीय शस्त्रविद्या के समृद्ध परम्परा को भी प्रकट करते हैं। दुर्गा देवी की प्रतिमाओं को देखने से हम देवी का कालक्रम से युद्धजय और शत्रुनाश की, देवी से समस्त भोग, सुख और मोक्षप्रदा के रूप में विकसित होते देख सकते हैं। पहले आयुधों में शस्त्रादि का बाहुल्य और परवर्तीकाल में अक्षमालादि ज्ञान के प्रतीकमूलक आयुधों को धारण करना, देवी के ब्रह्मज्ञानदातृत्व का परिचायक है। देवी के वर्ण में भी क्रमपरिवर्तन अर्थात् श्याम या दूर्वावर्ण श्याम से सूर्यकोटि के समान छवि होना देवी के ज्ञानस्वरूपता का द्योतक है। अत: शिल्पशास्त्र की इस लम्बी परम्परा को देखकर यह देवी के साधना का स्तरश: प्रकाश और क्रमश: देवी के स्वरूप का प्रकाश कहा जा सकता है।

प्राचीन भारतीय शिल्पकारों ने महिषासुरमर्दिनी दुर्गा देवी के स्वरूप के विविध आयामों को प्रकाशित किया है। दुर्गा देवी के दुर्गरक्षक क्षेत्रपालिका शक्ति से जगज्जननी आदिशक्ति रूप दोनों ही भारतीय शास्त्र में हमें प्राप्त होते हैं। केवल यही नहीं, दुर्गा देवी का महत्त्व भी भारतीय समाज और लोकमानस में क्या था, वह भी इन शिल्प शास्त्रों में क्रमश: देवी के वर्णन के बाहुल्य से ज्ञात होता है। भारतीय शिल्पशास्त्र के पर्यालोचन से महिषासुरमर्दिनी दुर्गा की प्रतिमायें प्रतिमा-शिल्प के गौरव को नये क्षितिज पर पहुँचा दी थीं, यह कह सकते हैं। ○○○

रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर में ११ अगस्त, २०२४ को १०.३० बजे रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव

श्रीमत् स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज ने माँ सारदा चैरिटेबल डिस्पेन्सरी और विवेकानन्द एजूकेशनल सेन्टर का उद्घाटन किया। ११ बजे सभा प्रारम्भ हुई, जिसमें डॉ. ओमप्रकाश वर्मा और स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी ने सभा को सम्बोधित किया। सभा की अध्यक्षता महासचिव महाराज स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज ने की।

शाम ५ बजे सभा के द्वितीय सत्र को स्वामी निर्विकारानन्द, स्वामी नित्यज्ञानानन्द तथा अन्य संन्यासियों ने सम्बोधित किया। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने सभा की अध्यक्षता की। आश्रम के सचिव स्वामी सेवाव्रतानन्द जी ने सभी आगत अतिथियों का स्वागत किया। लगभग २० संन्यासी और ४०० भक्तों ने भाग लिया।

४ जुलाई, २०२४ को **रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय, बेलूड़ मठ** में दीक्षान्त समारोह का आयोजन किया गया, जिसमें २९३ विद्यार्थियों को डिग्री और डिप्लोमा

प्रदान किया गया। रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महाध्यक्ष पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी गौतमानन्द जी महाराज और महासचिव श्रीमत् स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज ने विद्यार्थियों को सम्बोधित किया।

७ जुलाई, २०२४ को पावन रथयात्रा के दिन **रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, सिकरा-कुलीनग्राम** में श्रीरामकृष्ण मन्दिर में शयन-कक्ष तथा भोजनालय और साधु निवास का

उद्घाटन पूज्यपाद महाध्यक्ष महाराज स्वामी गौतमानन्द जी ने किया। इसमें महासचिव महाराज, १६५ साधु और २००० भक्तों ने भाग लिया।

२४ जुलाई, २०२४ को **रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, पुरुलिया** में कॉनफ्रेन्स रूम और २५ जुलाई, २०२४ को **रामकृष्ण मिशन आश्रम, आसनसोल** में डिस्पेन्सरी के तीन मंजिल भवन का उद्घाटन महासचिव महाराज पूज्यपाद स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज ने किया।